अंक १५१

जुलाई-सितंबर २०२०

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- डॉ. निरुपमा राय
- राजेंद्र राजन
- अर्चना पैन्यूली
- डॉ. अभिज्ञात
- डॉ. निधि अग्रवाल
- रवि शंकर सिंह

आमने-सामने

आचार्य नीरज शास्त्री

सागर-सीपी

धीरेंद्र अस्थाना

२० रुपये

T.A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.

Ph. : (off): + 91-22-25223613 / 67974515 / 6596 1234
Fax : + 91-22-25223631 • Email : tac@vsnl.com
• Website : www.chemicalsandinstruments.com

★ Offers ★

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
Ph.: 02646-272332
email: response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of:

- **Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)**
- **Riedel (Switzerland)**
- **Merch (GDR)**
- **Lancaster (UK)**
- **Strem (UK)**

जुलाई-सितंबर २०२०
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● न्यूयॉर्क संपर्क ●
नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044
● कैलीफ़ोर्निया संपर्क ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। सुमन-सुवास - डॉ. निरुपमा राय
।। १५।। हनी ट्रैप - डॉ. राजेंद्र राजन
।। २१।। मां की वजह से ज़िंदा हूं - अर्चना पैन्यूली
।। २७।। सोनकली और अशोकवृक्ष : एक दंतकथा - डॉ. अभिज्ञात
।। ३२।। बोल मेरी मछली कितना पानी ? - डॉ. निधि अग्रवाल
।। ३७।। एक नयी ज़िंदगी - रवि शंकर सिंह

लघुकथाएं

।। २०।। चक्रव्यूह / आनंद बिल्थरे
।। ३२।। जुलूस / युगेश शर्मा
।। ५२।। जगह / प्रतिभा चौहान
।। ५६।। मज़हबी खुराफ़ात / मार्टिन जॉन

ग़ज़लें / कविताएं

।। १४।। तुम साथ दोगी ना... (कविता)/ बबिता शेरेवाला गुप्ता
।। १४।। ग़ज़लें / मनाज़िर हसन "शाहीन"
।। २६।। ईश्वर से एक मुलाकात (कविता) / एम. हिमानी जोशी

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ४३।। "आमने-सामने" / डॉ. आचार्य नीरज शास्त्री
।। ४७।। "सागर-सीपी" / धीरेंद्र अस्थाना
।। ५०।। "औरतनामा" : डॉ. आनंदीबाई जोशी / डॉ. राजम पिल्लै
।। ५३।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : रेडवुड पार्क (क्लामथ,अमेरिका),१८ अगस्त २०२०.
फ़ोटो : तूलिका सक्सेना

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

कोरोना के अचानक हमले ने पिछले ७-८ महीनों में देश की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह चौपट कर दिया है. किंतु अब लगता है कि धीरे-धीरे स्थितियां सामान्य हो रही हैं. बीच में, कुछ समय पहले लग रहा था कि ऐसा न हो कि हमें पत्रिका बंद करना पड़े. क्योंकि "कथाबिंब" का प्रकाशन पूरी तरह विज्ञापनों पर निर्भर है. इसी कारण बहुत ही कम क़ीमत पर हम पत्रिका को पाठक तक पहुंचा पाते हैं. लॉकडाउन के कारण विज्ञापन मिलना सर्वथा कठिन हो गया. एक बड़ी कंपनी के, पहचान के वरिष्ठ अधिकारी से संपर्क किया तो उनका जवाब था कि इन दिनों कर्मचारियों को तनख़्वाह देना मुश्किल है, विज्ञापन की तो सोचो ही मत. इस सबके बावजूद थोड़ा विलंब से ही सही १५१ वां अंक पाठक "कथाबिंब" वेबसाइट पर अक्तूबर के अंत पढ़ सकेंगे. शीघ्र ही प्रिंट वर्ज़न भी पाठकों को उपलब्ध होगा.

●

आज कल एक्सक्लूसिव का ज़माना है. हमारा भी प्रयास रहता है कि हर अंक में एक्सक्लूसिव कहानियां रहें. अंक की पहली कहानी *"सुमन-सुवास"* के माध्यम से डॉ. निरुपमा राय ने कुछ समय बाद पुनः दस्तक दी है. कॉलेज़ के समय से मानसी और रीना अभिन्न सहेलियां थीं. लेकिन दोनों के विवाह उपरांत, थोड़े समय बाद उनका साथ छूट गया. उनके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये. घर की सफ़ाई करते हुए रीना को एक एल्बम मिला. पुराने चित्र देखकर रीना की आंखें नम हो आयीं. संयोग से उन्हीं दिनों टीवी के एक कार्यक्रम से पता चला कि मानसी "सुमन-सुवास" नाम की संस्था चला रही है. दरअसल रीना ही मानसी की सहेली सुमन है. संस्था के नाम की "सुमन" वास्तव रीना ही थी, आज दुनिया में सबसे ज़्यादा स्मार्ट फ़ोन भारत में हैं फ़ेसबुक, यू-ट्यूब, वाट्सएप, ट्वीटर न जाने क्या-क्या, स्मार्ट फ़ोन के कितने आयाम और सही ग़लत उपयोग हैं. अगली कहानी "हनी ट्रैप" (डॉ. राजेंद्र राजन) में मेनका, हो सकता है यह नाम फ़ेक हो, अपनी शहद जैसी मीठी बातों से विश्वामित्र (!) को फंसा कर पैसे ऐंठने की कोशिश करती है. अंक की तीसरी कहानी *"मां की वजह से ज़िंदा हूं"* की जानी-मानी प्रवासी लेखिका अर्चना पैन्यूली हैं. कहानी में मूल भारत में जन्मी नायिका डेनमार्क से दिल्ली रहने आयी है. दिमाग में हर समय विदेश और भारत की तुलना चलती रहती है. भारत में हर काम के लिए आसानी से नौकर-चाकर मिल जाते हैं -चाहे घर का काम करने वाली बाई हो, गार्ड हो, माली हो या कार धोने वाला हो या कपड़ों पर इस्त्री करने वाला हो. विदेश में ये सारी सुविधाएं बहुत महंगी होती हैं. ज़्यादातर लोग ये सब काम स्वयं ही करते हैं. युवा रजत बिल्डिंग में सुबह कारें धोता है और कपड़ों की इस्त्री भी करता है, सारे दिन मेहनत करता है. नायिका को देखकर अचरज होता है. एक मर्तबा कपड़े देते हुए वह कहती है कि महंगी साड़ी है जला न देना, तो रजत को ग़ुस्सा आता है. ग़ुस्से के साथ उसका दर्द भी पिघल कर सामने आता है.

अगली कहानी *"सोनकली और अशोकवृक्ष : एक दंतकथा"* (डॉ. अभिज्ञात) एक अलग धरातल की रचना है. फैंटेसी के माध्यम से लेखक ने पर्यावरण और मानव के आपसी रिश्ते को रेखांकित किया है. एक युवक के सिर पर कोई पक्षी बीट कर देता है. बीट में पीपल के पेड़ का बीज होता है, धीरे-धीरे युवक पीपल के पेड़ में परिवर्तित होने लगता है. इस बीच लड़के की शादी सोनकली से तय हो जाती है. सोनकली को जब मालूम पड़ता है कि उसका होने वाला पति एक पेड़ है तो वह पेड़ से ही प्यार करने लगती है. आखिर पेड़ ही तो हैं जो हमें जीवित रखते हैं. अगली कहानी *"बोल मेरी मछली कितना पानी ?"* में डॉ. निधि अग्रवाल ने पानी की समस्या को उठाया है. क्षेत्र चाहे कोई भी हो. राजनीति में क्षेत्र से अधिक शक्ति और रुतबे का महत्व है. चुनाव में दादा भावेश पाटिल, गजानन से बुरी तरह हार गया. नया विधायक गजानन चाहता है कि गांव के पुराने तालाब को बरसात से पहले खुदवा दे ताकि लोगों को पानी मुहैय्या हो जाये. यहां तक वह अपनी निधि से धन देने के लिए भी तैयार है. किंतु हारा हुआ प्रत्याशी अपने "हितैषियों" के माध्यम से हर क़दम पर रोड़े अटकाने की कोशिश करता है. लेकिन वह सफल नहीं हो पाता. चुनाव की सरगर्मी के कारण आजकल बिहार सुर्खियों में है. अंक की अंतिम कहानी "एक नयी ज़िंदगी" (रवि शंकर सिंह) बिहार के पुरुलिया के सीमनपुर गांव का आख्यान है. ऊबड़-खाबड़ धरती, लेकिन पेड़ों की हरियाली से आच्छादित इलाक़ा. यहां अनेक कुष्ठ रोगी स्वस्थ होने के बाद अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं. वर्तमान में, कुष्ठ असाध्य रोगों की गिनती में नहीं है, फिर भी स्वस्थ हो जाने के बावजूद घर-परिवार में ऐसे व्यक्ति को स्वीकार नहीं मिल पाता. सीमनपुर में कुष्ठ रोगियों के लिए एक बड़ा अस्पताल है. अजय ठीक होने के बाद, वर्षों से अस्पताल के रोगियों की सेवा-सुश्रुषा करता है. इस बीच काजल का पति इलाज के लिए पत्नी को छोड़ने आता है. काजल थोड़े दिनों बाद ठीक हो जाती है. लेकिन अजय की तरह उसे भी घर वाले स्वीकारते नहीं. अजय और काजल सब कुछ जान-समझ कर आपसी सहमति के बाद शादी करके एक नयी ज़िंदगी शुरू करते हैं.

●

पिछले दस-पंद्रह वर्षों में हिंदी-लेखन और मुद्रण के क्षेत्र में कंप्यूटर के इस्तेमाल से अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं. यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि आज हम एक स्वर्ण युग का अनुभव कर रहे हैं. कुछ पहले बड़ी पत्रिकाएं बंद हो रही थीं, हिंदी के पाठक की तलाश करनी पड़ती थी. धीरे-धीरे मुद्रण के नये सॉफ़्टवेयर आये. डेस्क टॉप पब्लिशिंग (डीटीपी) ने कंपोजिंग आसान कर दी. अनेक छोटे-छोटे शहरों से सज-धज के पत्रिकाएं निकलनी लगीं. साथ ही लैपटॉप के दामों में कमी आयी तो बहुत सारे लेखकों ने लैपटॉप

ख़रीद लिये और सीधे उसी पर लिखने लगे. वाई–फाई की सुविधा से प्रकाशक, संपादक से आनन–फानन में संपर्क करना सहज हो गया. इधर पूरी हुई नहीं कि झट रचना प्रकाशन के लिए भेज दी. कई बार तो एक से अधिक पत्रिकाओं को! न टिकट लगाने, न पोस्ट ऑफ़िस जाने का झंझट. सारा काम घर बैठे, सारा कुछ मुफ़्त! कई रचनाकार कविताएं, लघुकथाएं भेजने के लिए वाट्सअप का प्रयोग भी करते हैं. इस बीच कई नयी पत्रिकाएं शुरू हुईं, तो आर्थिक संकट के कारण कुछ ने मात्र ई–वर्ज़न निकालने की घोषणा की है. इसके अलावा भी पहले से अनेक ई–पत्रिकाएं निकल रही हैं.

•

भारत ही नहीं पूरा विश्व कोरोना के प्रकोप को झेल रहा है. लेकिन कहीं भी राजनीतिक गतिविधियों में कमी नहीं आयी है. विभीषिका का स्वरूप इतना भयंकर और व्यापक होगा यह किसी को नहीं मालूम था. तुलना में विकसित देशों की अपेक्षा सबसे अधिक जनसंख्या होने के बाद भी हमारे देश की स्थिति कहीं बेहतर है. इसके कई कारण हो सकते हैं. मुख्य कारण अन्य देशों की अपेक्षा लॉकडाउन की शीघ्र घोषणा, प्रधानमंत्री मोदी के मजबूत नेतृत्व पर भरोसा और जनता द्वारा लॉकडाउन के नियमों को गंभीरता से पालन करना. कहीं–कहीं पुलिस को सख़्ती भी दिखानी पड़ी. कई जगह कोरोना योद्धाओं पर पथराव भी किया गया. इस दौरान यदि शाहीन बाग, दिल्ली के दंगे, तब्लीगी मरक़ज़ जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं न हुई होतीं तो संभव है कि संक्रमण इतना न फैलता. अप्रैल तक काफ़ी कुछ नियंत्रण में था. हर तरह का आवागमन बंद था. अनेक सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाएं पूरे देश में घर–घर खाना पहुंचा रही थीं. ज़रूरतमंदों को मुफ़्त राशन पहुंचाया जा रहा था. शिक्षा संस्थानों के बंद होने के कारण कोटा में होस्टल में रहने वाले अनेकों छात्रों की मांग उठी कि उन्हें उनके घर जाने दिया जाये. राजस्थान व अन्य राज्यों ने मिल कर बसों का इंतज़ाम किया. इस बीच बिना केंद्र की सहमति के दिल्ली सरकार ने दिहाड़ी मज़दूरों के इलाक़ों में एक रात ऐलान कर दिया कि बॉर्डर तक ले जाने के लिए बसें खड़ी हैं. फिर क्या था, भगदड़ मच गयी. लोग बसों से या पैदल ही परिवारों के साथ सड़कों पर निकल पड़े. किसी ने इसके दूरगामी परिणामों के बारे में नहीं सोचा. बीच में मीडिया और विरोधी राजनीतिक दल गिद्धों की तरह कूद पड़े. विदेशी मीडिया को भी रोटी सेंकने का मौक़ा मिल गया. हर चैनल के रिपोर्टर भीड़ के साथ चलते–चलते, हमेशा की तरह लोगों से पूछते दिखे – "आपको कैसा लग रहा है?" टीवी पर बारबार एक दृश्य दिखाया जाता रहा जिसमें सोता हुआ एक बच्चा सूटकेस पर घसीटा जा रहा है. किसी दल ने यह नहीं किया कि बड़े पैमाने पर इन "प्रवासी" लोगों के भोजन की तथा अस्थायी कैंपों में रहने की व्यवस्था करता. दिहाड़ी मज़दूर अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं, कल को जब स्थिति सामान्य हो जायेगी तो इन्हें वापस कौन लायेगा. यदि सरकार और सभी विरोधी दल मिलजुल कर एक नियोजित ढंग से काम करते तो बहुत सारी मुश्किलों से बचा जा सकता था. युवराज राहुल गांधी भी कहां मौक़ा चूकने वाले थे. दिल्ली के एक फ़ुटपाथ पर मज़दूरों के साथ कुछ देर बैठकर एक वीडियो बनवा डाला.

इस बीच लॉकडाउन बढ़ाये जाते रहे. इधर, मध्य प्रदेश की राजनीति ने पुनः करवट ली. ज्योतिर्रादित्य सिंधिया ने कॉन्ग्रेस से किनारा कर लिया. थोड़ी बहुत खींचतान के बाद शिवराज सिंह चौहान पुनः मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री बने. ऐसा ही कुछ सचिन पायलट ने राजस्थान में करने की कोशिश की किंतु पर्याप्त संख्या–बल साथ न होने के कारण क़दम पीछे खींच लिये. कोरोना काल की सबसे बड़ी घटना उच्चतम न्यायालय द्वारा सर्वसम्मति से राम मंदिर का स्पष्ट निर्णय देना है. जिसे कुछ को छोड़ कर सभी पक्षों ने स्वीकारा. ५ अगस्त को प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने केवल पांच लोगों की उपस्थिति में, एक साधारण से कार्यक्रम में, राम मंदिर का शिलान्यास संपन्न किया. न जाने कितने सालों बाद अधिसंख्य भारतवासियों की मनोकामना पूर्ण हुई. पिछले कुछ समय से, हमारा पड़ोसी देश चीन उत्तर–पूर्व, गलवान क्षेत्र में जबरदस्ती घुसपैठ करने की कोशिश में है. दो–तीन गंभीर झड़पें भी हुईं, सभी का सेना ने यथोचित जबाव दिया. हमारे बीस जवान शहीद हुए. सरकार ने निर्णय लिया और सारे व्यापारिक रिश्ते ख़तम कर दिये. देश की जनता ने तय किया है कि कोई भी चीनी सामान नहीं खरीदेंगे.

कोरोना काल के मध्य एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई जिसने सारे देश को झकझोरकर रख दिया है. युवा और उभरते फ़िल्म कलाकार सुशांत सिंह राजपूत की १४ जून को संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु. यह आत्महत्या थी या हत्या, हर गुज़रते दिन के साथ रहस्य गहराता जा रहा है. पूरे ड्रामे में पिछले पांच महीने से रोज़ एक नया पात्र जुड़ जाता है. महाराष्ट्र की सीआई डी, केंद्र की सीआई डी, महाराष्ट्र और बिहार की सरकारें. पूरा बॉलीवुड. नारकोटिक्स विभाग. अब तक न जाने कितनी गिरफ़्तारियां हुई हैं. मीडिया अलग गुल खिला रहा है. सुबह से शाम तक मिनट–मिनट कवरेज़ – "रिया के घर की खिड़की, वह अब घर से निकली है, अब कार में बैठी.""आगे रिया की कार और पीछे हमारी कार." – छोटी से छोटी बात को दस–दस बार चिल्लाकर कहना. चैनलों की टीआरपी के लिए रेस. इन दिनों बिहार के चुनावों की गहमागहमी है. परिणामों पर सुशांत की मृत्यु भी अवश्य कुछ न कुछ प्रभाव डालेगी.

•

इस वर्ष पूरे देश में सामान्य से अधिक बरसात हुई. बाढ़ से बहुत बड़ा भूभाग प्रभावित हुआ. देश के अनेक क्षेत्र पहली बार बाढ़ से दो–चार हुए. देखा जाये तो उग्रवादी घटनाओं में कमी आयी है किंतु अपहरण, हत्या, बलात्कार जैसे अपराधों में अतुलनीय वृद्धि हुई है. लगता है कि पूरा पुलिस तंत्र विफल है. इस संबंध में सरकार को शीघ्र ही, बहुत ठोस और कारगर क़दम उठाने होंगे. सरकार अपने दायित्व से पीछे नहीं हट सकती.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का जन.-जून २०२० का अंक मिला. कोरोना वायरस के कारण देशभर में जो असुविधाएं और कठिनाइयां पैदा हो गयी हैं, उनको मात देकर आपने पत्रिका का जो दमदार अंक निकाला है, वह प्रसन्नता और आपकी तथा मंजुश्री की सामर्थ्य और प्लानिंग से उत्पन्न सुखद अहसास से भर देता है. इस अंक की १२ में से अधिकतर कहानियों में नवीनता और दम है. 'सागर-सीपी' और 'आमने-सामने', दोनों स्तंभों में जिन दो शख़्सों के बारे में जो सामग्री दी गयी है वह रोचक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक और प्रेरक भी है. यह सामग्री बताती है कि प्रतिभाओं को बुलंदी तक पहुंचने के लिए किन तपस्याओं से गुज़रना होता है. लघुकथाओं के चयन में कुछ और सख़्त होने की ज़रूरत है. लघुकथा एक ऐसी वामन अवतारी रचना होती है, जो समाप्ति पर पाठक को कुछ क्षण के लिए नि:शब्द कर देती है. आपका संपादकीय हमेशा दमदार होता है और समय की गति को संज़ीदगी के साथ दर्ज करता है. इस बार के संपादकीय में आपने दो पृष्ठों में अंक की कहानियों का सटीक परिचय दिया है और कोरोना की अच्छी ख़बर भी ली है. कोरोना के हमले को आपने पाठकों के साथ व्यावहारिक अप्रोच के साथ साझा किया है.

इस अंक की कहानियों के चयन में आप दोनों का चयन कौशल साफ़ झलकता है. ज़ाहिर है कि आप कहानियों का चयन कथाकार के नाम और उसके आभा मंडल को देखकर नहीं, अपितु कहानी की गुणवत्ता को देखकर करते हैं. यही कारण है कि 'कथाबिंब' के पाठकों को नये-नये कथाकारों के लेखन से परिचित होने का अवसर मिलता है.

डॉ. हंसा दीप की कहानी 'काठ की हांडी' ने प्रेरणा का जो मार्ग दिखाया है वह बहुत बड़ी बात हमारे सामने रखता है. उसने जीवन की सार्थकता को ठीक-ठीक परिभाषित कर दिया है. 'रामचरित मानस' में तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है — 'परोपकार सरिस धर्म नहीं भाई.' हंसा जी को उत्कृष्ट कहानी के लिए बधाई. कथाकार बद्रीसिंह भाटिया की कहानी 'टेलीफ़ोन' चिकित्सा की दुनिया और उसके भीतर की जो पीड़ा और चुनौतियां हैं, उनसे बख़ूबी परिचित कराती है. विवाहित महिलाओं को चिकित्सा के क्षेत्र में जिन मानसिक संघर्षों से गुज़रना पड़ता है, उसका यथार्थ चित्रण कहानी में है.

इस अंक में पत्रकारिता की पृष्ठभूमि वाली दो कहानियां हैं — कमलेश भारतीय की 'अपडेट' और अनिता रश्मि की 'ख़बर की तलाश में'. आजकल टीआरपी और सबसे पहले हमारा कवरेज़ की अंधी गुफा में प्रवेश कर चुका मीडिया हक़ीक़त को पाठकों और दर्शकों के सामने रखने की बजाय सनसनी के सरपट दौड़ते घोड़े पर सवार हो गया है. मैं एक वरिष्ठ पत्रकार होने के आधार पर यह कह सकता हूं कि मीडिया की इस अंधी दौड़ का राजनीति को ओढ़ने-बिछाने वाले भरपूर फ़ायदा उठाकर अपने राजनीतिक स्वार्थ साध रहे हैं. दोनों कहानियां आज की पत्रकारिता का असली चेहरा प्रस्तुत करती हैं.

प्रगति गुप्ता की कहानी 'खिलवाड़' और डॉ. कविता विकास की कहानी 'जॉली बुआ' तथा श्रीमती छाया सिंह की कहानी 'सांझी छत', ये तीन कहानियां ऐसी हैं, जो हमारे जीवन की सच्चाई को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती हैं. जीवन के चक्रव्यूह में फंसकर फड़फड़ाते रहने से उससे बाहर निकलने की राहें ये कहानियां बताती हैं. 'खिलवाड़' कहानी ने ख़ास तौर पर अभिभावकों को नसीहत दी है कि वे अपने बच्चों पर अधिक गंभीरता से ध्यान दें. वे जवानी के ज़ोश में नहीं समझ पाते कि उनके क़दम शनै: शनै: बर्बादी की तरफ़ बढ़ रहे हैं. भटकाव के इस दौर में अभिभावकों को सतर्क और समझदार बनकर अपनी भूमिका निभाना होगी.

कथाकार सुशांत सुप्रिय, संजय कुमार सिंह, डॉ. शैलेंद्र शर्मा, निरुपम तथा डॉ. प्रभा कुमारी की कहानियां भी पठनीय हैं. इनमें भी कहन का नयापन और विषय वस्तु का अछूतापन विद्यमान है. सभी रचनाकारों को बधाई. अंक की पद्य की रचनाएं भी अंक की उपादेयता और श्रेष्ठता को बढ़ाने में प्रशंसनीय भागीदारी कर रही हैं.

युगेश शर्मा

'व्यंकटेश कीर्ति, ११ सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.
मो. : ९४०७२७८९६५.

▸▸ 'कोरोना' के इस संकटकाल में भी हमारे देश में सिर्फ़ राजनीति और सत्ता की धुरी पर ही ज़रूरी चीज़ें केंद्रित हो गयी हैं. जहां पर कोई भी समस्या अपने किसी सुखद परिणाम पर ख़त्म नहीं होती. हमारे बीच से अचानक किसी भी तरह का सामुदायिक चिंतन ख़त्म हो चला है. हमारे आस-पास जितने भी संचार माध्यम उपलब्ध हैं वे कभी इस विषय पर चर्चा नहीं करते कि इस संकट काल में कितनी पत्रिकाएं निकल रही हैं. अपनी जान को जोख़िम में डालकर वे कौन से संपादक-प्रकाशक हैं जो इस चुनौती भरे समय में अपना काम पूरी मुस्तैदी के साथ कर रहे हैं. यह अलग बात है कि इस संकटकाल में साहित्य और पत्रिकारिता के लिए काम करनेवालों को 'वारियर्स' और 'योद्धा' की उपाधि नहीं दी गयी है. इस बीच मुझे कुछ पत्रिकाएं नेट के माध्यम से दिख पड़ी हैं जिनमें साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' का १५०वां अंक भी शामिल है. यह पत्रिका डाक द्वारा नियमित रूप से मेरे पास आती रही है... आज जब इसका १५० वां अंक देखा तो मुझे आत्मिक प्रसन्नता हुई. किसी भी पत्रिका का सौवां अंक, डेढ़ सौवां अंक या इससे आगे की गिनती के अनेक वर्ष के अंक निकलें तो यह प्रशंसा की बात तो है ही. कहना चाहिए कि यह न सिर्फ़ उस पत्रिका की जीवंत उपस्थिति का प्रमाण है बल्कि उसके संपादक के साहित्यिक पागलपन की हद तक उसके उस जुनून का भी प्रतीक है जो 'ज़िद्दी' है और एक साहित्यकार,पत्रकार, कलाकार और संपादक को ज़िद्दी होना ही चाहिए. ज़िद के साथ जुनून का शायद निकट का रिश्ता है.

'कथाबिंब' का जनवरी-जून २०२० का अंक एक संयुक्तांक है. मैं सोचता रहा कि शायद देश में कोरोना का संकट न होता तो पत्रिका के डेढ़ सौवें अंक को संपादक निश्चित तौर पर एक अलग अंक का रूप देते और जब उनका संपादकीय पढ़ने बैठा तो लगा, शायद उन्होंने ऐसा ही सोचा होगा. इस अंक की शुरुआत हंसा दीप की सशक्त कहानी 'काठ की हांडी' से होती है. कुल बारह कहानियों में छह कहानियां महिला कथाकारों की हैं. अनिता रश्मि, छाया सिंह, कविता विकास, प्रगति गुप्ता, प्रभा कुमारी की कहानियां भी इस अंक में शामिल हैं. इनके साथ बद्रीसिंह भाटिया, सुशांत सुप्रिय, संजय कुमार सिंह, कमलेश भारतीय, शैलेंद्र शर्मा, निरुपम की बेहतरीन कहानियों का चयन है. चार लघुकथाएं, ग़ज़लें, कविताएं और पत्रिका के नियमित स्तंभों में उम्दा सामग्री समाहित है जो निश्चित रूप से कथाबिंब को विशिष्ट बनाती है. कुल ९२ पृष्ठों में प्रकाशित इस पत्रिका का मूल्य चालीस रुपए है. संपादक और उनकी टीम को बधाई.

डॉ. अमरेंद्र मिश्र, (सं.) समहुत,
'मौसम' ४/५१६, पार्क एवेन्यू, वैशाली,
गाजियाबाद—२०१०१०. मो. ९८७३५२५१५२

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-जून २०२० अंक मिला. पढ़ा. हर बार की तरह यह अंक भी उम्दा है. बारहों कहानियां कोविड के मौज़ूदा नकारात्मक माहौल में मन को सुकून दे गयीं. लघु कहानियां भी संदेश देती प्रतीत हुईं. पसंद आयीं. 'आमने-सामने' में उद्घोषक आनंद सिंह से भेंटवार्ता रोचक व प्रेरक लगीं. आनंद सिंह एक कामयाब और श्लाघनीय उद्घोषक रहे हैं. उन्हें मेरी शुभकामनाएं और आपको भी शुभकामनाएं उनका प्रोफ़ाइल छापने के लिए तथा पाठकों के समक्ष 'कथाबिंब' का एक और उल्लेखनीय अंक प्रस्तुत करने के लिए.

- डॉ. अमरीश सिन्हा
हिंदी विभाग प्रमुख
दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड,
१७-ए, कूपरेज रोड, मुंबई-४००००१

▸▸ 'कथाबिंब' का नवीनतम अंक मिला, धन्यवाद. अंक हमेशा की तरह महत्वपूर्ण और संपादकीय विचारोत्तेजक लगा. इस अंक की सभी कहानियां अच्छी हैं, विशेषकर श्रीमती छाया सिंह की 'सांझी छत' तथा प्रगति गुप्ता की 'खिलवाड़' कहानियां बहुत पसंद आयीं.

'सागर-सीपी' में मनमोहन सरल के साथ सविता मनचंदा की बातचीत अच्छी लगी. स्कूल और कॉलेज़ के ज़माने में मैं श्री मनमोहनजी का नाम सुनता आ रहा हूं. 'धर्मयुग', 'माधुरी' के अलावा कई पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं मैंने पढ़ी हैं. 'आमने-सामने' में प्रसिद्ध उद्घोषक आनंद सिंह के जीवन का सफ़र बहुत ही प्रेरणास्पद लगा. आनंद सिंह ने स्वर परीक्षा की प्रक्रिया का बहुत ही रोमांचक वर्णन किया है.

'कुछ कही, कुछ अनकही' में संपादक महोदय ने विश्व में तेज़ी से फैल रहे कोरोना के महासंकट के बारे में सटीक जानकारी प्रस्तुत की है. संपादकीय पढ़ते समय मुझे एक वाट्सएप मैसेज़ याद आ गया जिसमें एक बच्चा

अपनी मां से पूछता है कि कोरोना के संकट काल में मंदिर क्यों बंद कर दिये गये हैं, इस पर उसकी मां जवाब देती है कि इन दिनों सारे भगवान मंदिर से बाहर आ गये हैं, वे अब डॉक्टर, नर्सेस, वार्डबॉय, पुलिस अधिकारी, सफ़ाई कर्मचारी के रूप में इंसानों को बचा रहे हैं, हमारी सेवा कर रहे हैं.

'कथाबिंब' का यह अंक कुल मिलाकर बहुत शानदार और संग्रहणीय बना है.

– ताराचंद मकसाने
ए–५०२, 'यशवासीन', सेक्टर-७,
खारघर, नयी मुंबई-४१०२१०.

▸▸ माधवजी, कथाबिंब का जनवरी-जून २०२० का अंक प्राप्त हुआ बहुत धन्यवाद. अंक की सभी कहानियां अच्छी लगीं, सांझी छत और जॉली बुआ कहानी ने बहुत अच्छा प्रभाव छोड़ा है. सांझी छत में अनाथ बच्चों को अभिभावक और बेघर बुज़ुर्गों को बच्चों का मिलना यह सोच अच्छी लगी एवं जॉली बुआ कहानी में कविता जी ने स्त्री को धरती मां की संज्ञा दे दी जो सब कुछ सह कर भी स्वयं के भार को और आंधी पानी के तेज़ को सहती है. जो स्त्री सब कुछ जानते हुए भी स्वयं को गूंगा-बहरा बना कर बच्चों के सामने पति को एक आदर्श पिता और माता-पिता के सामने एक संस्कारी पुत्र ही बने रहने देती है. कई बार तो कहानी पढ़ते-पढ़ते आखें भी भर आयीं.

स्तंभ आमने-सामने में आनंद सिंह जी और डॉ. इंद्रकुमार शर्मा जी की आत्मरचना पढ़कर बहुत अच्छा लगा. आनंद जी आपने सही कहा है 'सपने साकार अवश्य होते हैं बशर्ते उम्मीद, धीरज और मेहनत से सींचे गये हों. गांधी जी की आत्मकथा मेरे सत्य के प्रयोग का आपकी ज़िंदगी पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा. डॉ. इंद्रकुमार शर्मा जी पढ़कर अच्छा लगा आपका नाम राजभाषा विभाग की दूसरी सूची में सम्मिलित है.

हरविंदर चोपड़ा
४०१, मेनका बिल्डिंग, डायमंड गार्डन,
चेंबूर, मुंबई-४०००७१.

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-जून २० संयुक्तांक मिला. धन्यवाद. सभी कहानियां आद्योपांत पढ़ गयी. आपका संपादकीय भी. कहानियों की समुचित समीक्षा तो आपने कर ही दी है. यहां मैं अपनी कुछ प्रतिक्रियाएं देना चाहूंगी. ये कहानियां बदलते हुए भारत का तेवर बताती प्रतीत होती हैं. कल तक की कहानियों का मुख्य स्वर होता था...भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अव्यवस्था, स्वार्थ लोलुपता, लगभग अराजकता जैसी स्थितियों में पिसता आम आदमी. मगर इस अंक की कहानियों में ये बातें नदारत हैं. अस्पताल का चित्रण है. सजीव चित्रण. मगर पहले जैसा भ्रष्टाचार, अव्यवस्था में डूबा अस्पताल नहीं. कई कहानियों में पुलिस का चित्रण हैं मगर पहले जैसा जुल्मी पुलिस चित्रण नहीं. हज़ार पंखोंवाला आसमान में तो स्वयं एस. पी. साहब विद्रोहिणी राजकुमारी को संघर्ष की प्रेरणा देते हैं. 'रुकी हुई यात्रा' में बिगड़ती हुई भीड़ को पुलिस आकर नियंत्रित करती है और 'काल कोठरी और कंदील' में तो जेलर साहब जेल में सुधार की ऐसी बयार लाते हैं कि अपराधियों के बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं और अच्छे नंबर भी लाते हैं. निश्चय ही यह बेहतर भविष्य के शुभ संकेत हैं.

मगर फिर पंखुरी जैसी उच्छृंखल युवाओं के चिंतनीय संकेत भी हैं.

अंक के सभी लेखक मंजे हुए हैं और अपने लेखकीय दायित्व के प्रति पूरी तरह सचेत हैं. कमलेश भारतीय तो खैर वरिष्ठ लेखक हैं लेकिन अनिता रश्मि, सुशांत सुप्रिय ने भी जटिल कथानक को पूरे लेखकीय दायित्व से चित्रित किया है. 'सांझा छत' में छाया जी ने 'अमिता सचदेवा' जैसे लोगों की स्थिति उठायी है और समाधान भी बख़ूबी सुझाया हैं. जॉली बुआ का कथानक पति और परिवार के प्रति समर्पित नारी का ऐसा दर्द बताता है जो सदियों पुराना है. अनिताजी ने उसे मार्मिकता से उभारा है.

समय और समाज का सजीव चित्रण करते हुए ये सभी लेखक मानवीय संवेदनाओं को उभारने में पूरी तरह सफल रहे हैं, चाहे वह रोज़ा की संवेदना हो या सिस्टर चंद्रा की, वृंदा की संवेदना हो या ललिया की. मानवीय संवेदना ही नहीं राष्ट्रीय चेतना भी चमक उठती है जब 'ख़बर की तलाश में' सनम बच्ची की क्षत-विक्षत लाश को एक तरफ़ पड़े हुए तिरंगे से ढंक देता है और जब 'अपडेट' में दंगा फसाद शांत होने के बाद पत्रकार चिंतित होता है कि सब चीज़ें तो अपडेट कर ली गयीं मगर किसी ने भाईचारा अपडेट क्यों नहीं किया.

सभी लेखकों को बधाई. श्रेष्ठचयन के लिए आप सबको विशेष साधुवाद।

शुभदा मिश्र
१४, पटेलवार्ड, डोंगरगढ़ (छ.ग.) –४९१४४५
मो.:८२६९५९४५९८

'सुमन-सुवास'

डॉ. निरुपमा राय

शिक्षा : एम. ए. (संस्कृत),
नेट पीएच. डी., पीडीएफ (डी. लिट)

: प्रकाशन :
कहानी संग्रह : 'और झरना बह निकला', 'खूंटे से समाधि तक', 'चाक पर मिट्टी', 'प्रतिरूप तुम्हारा'.
शोध ग्रंथ : १. 'विष्णु पुराण में भक्ति तत्व', २. 'संस्कृत साहित्य पर वैष्णव धर्म दर्शन का प्रभाव.'
नारी विमर्श : नारी परिवर्तन के दर्पण में. प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में २०० से अधिक कहानियां, वेद पुराण उपनिषद से जुड़े शताधिक आलेख.
प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मान और पुरस्कार. कहानियों का आकाशवाणी से सतत प्रसारण.

: संप्रति :
प्राध्यापिका-(संस्कृत-विभाग)
पूर्णिया विश्वविद्यालय,
पूर्णिया.

वर्षों बाद पिछले कुछ दिनों से महिला कॉलेज़ की प्रोफ़ेसर डॉ. रीना सुमन आराम से घर पर थी, नहीं नहीं. गर्मी की छुट्टियां शुरू नहीं हुई थीं... यह तो करोना वायरस की वजह से हुआ लॉकडाउन था जिसमें संपूर्ण देशवासियों के साथ-साथ रीना भी दिन–रात सुबह शाम अपने ही घर में रह रही थी. एक सप्ताह इतनी चैन से गुज़रा कि उसे लगा जीवन की भागा-दौड़ी में वह तो जैसे अपना अस्तित्व ही खोती जा रही थी. एक रूटीन पर दौड़ते-दौड़ते उसकी ज़िंदगी न जाने कहां जाकर ठिठक गयी थी. जीवन में किसी भी तरह के रस का अभाव होने लगा था, चैन से एक कप कॉफी पीने का भी समय नहीं था उसके पास, और आज समय ही समय है, मन शांत स्थिर चित्त-सा लग रहा है. दोनों बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई में व्यस्त थे और पति वर्क फ्रॉम होम के तहत ऑफ़िस के कामों में. उसने सोचा आज शादी के समय ही आयी बड़ी अलमारी को साफ़ कर लेती हूं... पिछले १०-१५ साल से बस ऊपरी तौर पर ही सफ़ाई हुई है भीतर से तो इसको हाथ भी नहीं लगाया है. साफ़ कर ली जाये आज यही अलमारी... सुमन अलमारी से सामान निकाल-निकाल कर बिस्तर पर रखने लगी... अचानक छोटा-सा बैग पुरानी साढ़ियों के गट्ठर से निकल अलमारी से नीचे गिरा और ढेर सारी चिट्ठियां चारों तरफ़ बिखर गयीं... हल्के पीले... आसमानी...गुलाबी... सफ़ेद कई रंगों के क़ाग़जों पर लिखीं चिट्ठियां उसके आस-पास फैल गयी थीं... अरे यह तो मानसी की चिट्ठियां हैं! उसने सहेज कर सारी चिट्ठियां उठा लीं... मन अनायास विगत की ओर भाग चला था. मानसी उसकी अभिन्न सहेली, जिसके साथ उसने जीवन के पांच बेहतरीन साल गुज़ारे थे. मस्ती और असंख्य सपनों से भरी उड़ान को जिया था. जो हमेशा कहा करती थी कि ज़िंदगी ज़िंदा दिली का नाम है. हंसना–हंसाना ही तो हमारा काम है. कहां हो तुम मानसी! उसका

मन बेचैन हो गया था.

दस साल का लंबा समय बीत चुका था. ऐसा नहीं था कि उसने मानसी से मिलने और उसे ढूंढ़ने का प्रयास नहीं किया था. वो हर उस जगह पर गयी थी जहां मानसी के संबंध में जानकारी मिलने की संभावना हो सकती थी. सारी चिट्ठियां एक जगह जमा करके वो निढाल–सी सोफ़े पर बैठ गयी... गुलाबी रंग के सुंदर से क़ाग़ज पर लिखे मानसी के शब्द आंखों के सामने मानो चमक उठे थे...

'प्रिय सुमन,

कैसी हो ? कितना अच्छा जीवन होता है ना जब हम कॉलेज़ में पढ़ते हैं, सखी-सहेलियों के साथ रहते हैं, उन्मुक्त गगन में उड़ान भरते पंछी की तरह जीवन को सही अर्थ में जीते हैं. शादी होते ही लड़कियों का जीवन इतना क्यों बदल जाता है? मैं आज तक समझ नहीं पायी. शादी अगर दो आत्माओं का मिलन है तो कभी-कभी क्यों आत्मा अहं के दंश से भर उठती है. देखो, तुमसे ना मिले महज पांच-छः महीने हुए हैं, पर ऐसा लग रहा है जैसे बरसों बीत गये. एम. ए. करने के बाद हम दोनों अपनी–अपनी पीएच. डी. में व्यस्त हो गये, पर फिर भी जो भी समय मिला हमने एक दूसरे के साथ सुख–दुख बांटा है. तुम तो अभी छोटी बहन की शादी की तैयारियों में व्यस्त होगी है ना? मैं भी अपने जीवन की विडंबनाओं के साथ अति व्यस्त हूं. सबसे अच्छी ख़ुशख़बरी जो तुमने सुनायी वह तुम्हारी बहन की शादी है इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या हो सकती है. वह तो अभी बनारसी बाबू से मिलने के सपनों में खोयी रहती होगी और मां-पापा शादी की तैयारियों में व्यस्त रहते होंगे यह समय ऐसा ही होता है. मैं तो अपनी शादी को पूरा क्या अधूरा भी नहीं जी पायी हूं, जल्दी बच्चा आ जाने के कारण मेरी ज़िंदगी अभी पति के इर्द-गिर्द घूमने के बजाय बच्चे की होकर रह गयी है. अपनी ज़िंदगी तो मेरे लिए अब सपना-सा हो कर रह गया है. एक तरह से यह समझो कि मैं ग़ुस्से में ही अपने मायके में अभी रह रही हूं क्योंकि मनोज मेरी अपनी सुविधा की बात मानने के लिए तैयार ही नहीं हैं और मुझसे अकेले सारे काम पार लगना मुश्किल हो गया है. उन्होंने मेरे सेंटीमेंट्स और सुविधा की मांग को अकर्मण्य रईसी का जामा पहनाया है. उनका कहना है कि तुम कर्मठ नहीं हो. दुनिया की सभी महिलाएं घर का काम करती हैं, तो तुम्हें घर का सारा काम करने में तकलीफ़ क्यों है? कौन सी शर्म है...पर तुम बताओ, पढ़ाई, घर का काम और बच्चे का पालन–पोषण यह सब एक औरत अकेले कैसे कर सकती...है ? वह भी वह औरत जो शादी के पहले तक सुविधाओं के बीच पली हो. यह सब काफ़ी लंबी–चौड़ी बातें हैं जब तुम मिलोगी और मेरे पास रहोगी तभी समझ सकोगी. और मेरे और मनोज के मानसिक अंतर को केवल तुम ही समझ सकती हो, वह मुझे पूर्णतया अपने सांचे में ढालना चाहते हैं जो कि अब मेरे लिए काफ़ी मुश्किल है. तुम शादी के बाद अपने कैरियर पर पूरा ध्यान तभी दे पा रही हो ना जब तुम्हारे ऊपर कोई अन्य रिस्पांसिबिलिटी नहीं डाली गयी है ..? तुम्हारे पति तुम्हारा पूरा सहयोग करते हैं तो आज तुम पीएच. डी. कर रही हो...पर मेरे पति... उनका तो कहना है मैं अपने माता-पिता का इकलौता बेटा हूं वो लोग तुमको चाहे जो कह दें पर तुमको उस बात का जवाब नहीं देना है. और चुपचाप मेरे अनुसार करना है ताकि मनोज को एक क्रेडिट मिले कि उनकी पत्नी कितनी अच्छी है. पर मैं कोई कठपुतली नहीं हूं ना ...जिसे जो चाहेगा नचाने लगेगा. ऐसा नहीं है कि मनोज मुझे पसंद नहीं है. बस, उनकी यही सब बातें स्वीकार्य नहीं... नतीज़ा मैं अपने स्वाभिमान को बचाए रखने के लिए यहां दिन काट रही हूं. और मैं अभी यहां से जाने वाली भी नहीं हूं... मनोज आते रहते हैं और मैं लगातार उनसे बहस करती रहती हूं. वो मेरे को समझ नहीं पा रहे हैं कि मैं क्या हूं... या हो सकता है वह समझ रहे हों और मुझे एक टफ़ लेडी के रूप में देखना चाहते हों जो कि मेरे नेचर के विपरीत है. सच कहती हूं उनका यही रवैया रहा तो मैं रफ़ एंड टफ़ तो ज़रूर बन जाऊंगी पर मेरे मन से मेरे सॉफ़्टनेस और इनोसेंसी के खोने का दुख हमेशा बना रहेगा. हो सकता है कि यहां मेरी तबीयत ख़राब होने का कारण भी यही हो. मेरी मानसिक उद्विग्नताएं... मेरा चिंतन...मेरी सोच...यह सब तो तुम ही उनको बता सकती हो, कि मैं क्या हूं, क्या कर सकती हूं और क्या चाहती हूं. मैं समझती हूं कि तुम्हारी बातों पर उनको विश्वास करना चाहिए क्योंकि वह जानते हैं कि तुम मेरे काफ़ी नज़दीक हो, सारांश यह है कि मैं अभी नया वातावरण और उस वातावरण से उत्पन्न उस आदमी के साथ सामंजस्य बिठाने की समस्या युक्त प्रक्रिया से गुज़र रही हूं. और इसका निदान भी मुझे ख़ुद ही ढूंढ़ना होगा. बाबू अब छः महीने का होने को आया और बैठने भी लगा

है. मुझे बस प्रतीक्षा है तुम कब मेरे पास आओगी. बहुत ऐसी बातें होती हैं जिसे केवल दोस्त समझ लेता है परंतु पति नहीं समझ पाता. बल्कि पति से कहना भी बेकार ही लगता है, समझ रही हो ना. तुमसे जब मिलूंगी तो विस्तार से सारी बातें होंगी. इसी मानसिक उहापोह से मैं आजकल गुज़र रही हूं. शेष फिर कभी... अपना ध्यान रखना,

तुम्हारी ही मन्नू.'

पत्र पढ़कर रीना की आंखें भीग उठीं, मन अनायास उस दौर में चला गया जहां उसने मानसी के साथ बहुत ही सुंदर समय बिताया था. कितनी हंसमुख और ज़िंदादिल थी वो, छोटी-छोटी बातों पर जोर का ठहाका लगाना हरदम हंसते रहना जीवन में कोई भी परेशानी आए हंसते-हंसते उसके हल को ढूंढने की कोशिश करना. तीन भाइयों की इकलौती बहन, घर में सबकी लाडली थी मानसी. उसके भाई हमेशा हॉस्टल में मिलने आते रहते और रीना से भी मानसी-सा स्नेह करते थे.

आस-पास कई पत्र बिखरे पड़े थे और उनके मध्य बैठी रीना सोच के अथाह सागर में डूब उतर रही थी. सच ही तो है, वह मानसी को कितना समझती थी और मानसी उसे, पर पीएच. डी. के बाद दोबारा वह मानसी से मिलने कहां जा पायी, मानसी के पत्रों में केवल रीना से मिलने की अदम्य लालसा रहती. पर रीना पारिवारिक विडंबनाओं में फंस कर घर से निकल ही नहीं पायी. एक एक्सीडेंट में जेठ जेठानी की मौत, उनके बच्चों के पालन–पोषण की ज़िम्मेदारी, फिर अपनी संतान, बूढ़े सास-ससुर, घर-परिवार... पति सब की देखभाल करते-करते न जाने कैसे और कब इतने वर्ष बीत गये. और एक महाविद्यालय में व्याख्याता हो जाने के बाद तो जैसे समय सिकुड़ कर मुट्ठी भर रह गया था. धीरे-धीरे पत्र व्यवहार कम होने लगा, कभी-कभार एक दूसरे को फ़ोन कर लिया करते थे फिर वो भी अचानक से बंद हो गया. रीना ने मानसी को कई पत्र लिखे पर कोई जवाब नहीं आया. जिस फ़ोन पर बात होती थी उस पर भी अब कॉल नहीं लगती थी. शायद मानसी के पति का तबादला हो गया हो. रीना दिन-रात प्रतीक्षा करती कि कभी तो मानसी का कॉल या कोई पत्र आएगा. पर वर्षों बीत गये ऐसा कुछ नहीं हुआ. आज पुरानी अलमारी में सहेज कर रखे वे सारे पत्र उसे पुनः मानसी की स्मृति से सराबोर कर गये थे. उसने फ़ेसबुक पर भी ढूंढने की बहुत कोशिश की पर कहीं भी मानसी नहीं मिली. उसका दिल बार-बार कह रहा था, कहां हो मानसी?

'अरे क्या कर रही हो आज खाना नहीं मिलेगा क्या? पति का स्वर पीछे से गूंजा तो रीना की सोच पर विराम लगा. ठीक ही तो है, ना काम करने वाली बाई आ रही है ना नौकर श्यामू घर आ रहा है सारा काम तो उसके ही सिर पर है. वह उठी और खाना बना कर पति और बच्चों को खिला कर ख़ुद भी खाकर बिस्तर पर लेट गयी. फिर से मन विगत की गलियों की तरफ़ दौड़ चला जहां वो थी... उसकी मन्नू थी और...

'देखना रीना मेरी शादी होगी ना तो मैं अपने पति को इतना प्यार करूंगी कि वह तो बस मेरी मुट्ठी में क़ैद होकर रह जाएगा.'

'हां हां, तू है ही इतनी प्यारी, तेरे परिवार के सभी सदस्य तेरे प्रेम बंधन में बंध जाएंगे.' रीना हंस पड़ती.

'अरे! बंधन में तो तब बंधेंगे ना जब शादी होगी! मांगलिक है आपकी लड़की... कोई मांगलिक लड़का ही ढूंढ़ना पड़ेगा ...शास्त्री जी ने मां को दो टूक कह दिया है, और मेरी मां किसी भी क़ीमत पर बिना कुंडली मिलाए मेरी शादी थोड़ी ही करेगी. ना नौ मन तेल होगा ना राधा नाचेगी.'

'अरे मन्नू ऐसा क्यों सोचती है नौ मन तेल भी होगा और राधा नाचेगी भी...' रीना कहती तो दोनों ठहाका लगाकर हंस पड़ते.

कई लड़के मन्नू को देखने हॉस्टल में आये थे तो मन्नू के साथ रीना भी वहां थी. कुछ लड़कों को मानसी अस्वीकार कर देती तो कुछ लड़के लड़की थोड़ी मोटी है... नाक चिपटी है... आंखें अंदर धंसी हैं. ऐसा बोल कर निकल लेते! दिन-रात हंसने वाली चुटकुले सुनाने वाली कभी भी चैन से न बैठने वाले मानसी फिर भी उदास नहीं होती थी उसके ठहाके होटल में गूंजते रहते. अक्सर रीना कहती, तुझे तो मां-बाप ने सर चढ़ा कर रखा है जितना पैसा बोलती है उससे दुगना भेजते हैं सारे भाइयों की लाडली है कैसे रहेगी तू ससुराल में?

'अरे रह लेंगे हम. कोई रूठा तो... तो फिर प्यार से सब को मना लेंगे. ज़िंदगी है. क्यों हिम्मत हारना? बस हंसना मुस्कुराना ख़ुशियां बांटना और क्या? यह जीवन है इस जीवन का... यही है.. यही है ..यही है. रंग रूप ...

थोड़े गम है... थोड़ी ख़ुशियां ... यही है... यही है... यही है... छांव धूप...!' तेज़ स्वर में यह गाना गुनगुनाती मानसी जोरदार ठहाका लगाती.

पर ज़िंदगी उतनी आसान नहीं थी जितनी की मानसी ने सोची थी. कई बार कुंडलियां मिलायी गयीं, हर विधि-विधान पूरे किये गये, धूमधाम से उसका विवाह संपन्न हुआ मनोज के साथ... और मुस्कुराती हुई वो ससुराल चली गयी. फ़ोन पर बातें होती रहतीं फिर धीरे-धीरे वह भी बंद हो गयीं और पत्रों में उसकी व्यथा निकल कर सामने आने लगी.

रीना लाख समझा कर थक गयी, 'जो हम सोचते हैं परिस्थितियां हमारे अनुसार नहीं होतीं मन्नू! धैर्य, आशा और विश्वास के साथ उन परिस्थितियों से तालमेल बिठाकर जीना ही ज़िंदगी है. जीवन की आशाओं से भरी मेरी मन्नू को यह क्या हो गया है?' पर वह तो मानसी थी ना, उसकी समझ में सारी बातें नहीं आती थीं अब ना चाहते हुए भी धैर्य खोने लगी थी. उसे लगता कि भले ही पूरा परिवार घर में है पर मनोज उसको लेकर सिनेमा क्यों नहीं जाता? वह क्यों अपने ससुराल की छत पर उन्मुक्त होकर टहल नहीं सकती? क्यों दिल खोलकर हंसने मुस्कुराने वाली मानसी को धीमी आवाज़ में बोलने के लिए कहा जाता है? मनोज बस एक बात कह कर उसके सामने बैठ जाता, 'जैसी भी परिस्थिति है उसका सामना करना सीखो... नाजुक कांच की गुड़िया नहीं रफ़-टफ़ लेडी बनो. यहां तुम्हारे पिता का साम्राज्य नहीं मेरा राज्य है.'

मनोज की ये बातें उसका दिल तोड़ देती थीं. ऐसे में गर्भवती हो गयी तो उसकी खिन्नता और बढ़ने लगी. कहां वह पति के साथ एक मीठा जीवन जीना चाहती थी और कहां विभिन्न परिस्थितियों में आबद्ध होकर नितांत एकाकी रह गयी थी. फिर बच्चा हुआ, उसके पालन-पोषण में व्यस्त हो गयी. फिर इस अंतिम पत्र के बाद कोई दूसरा पत्र नहीं मिला. कहां हो मानसी? कैसे ढूंढूं तुम्हें? जब तुम्हें मेरी ज़रूरत थी तब मैं तुम तक पहुंच नहीं सकी पर क्या करूं... जीवन की विडंबनाओं में फंसकर हर इंसान अच्छे रिश्ते को खो देता है जैसे कि मैंने तुम्हें खो दिया.

रीना सोफ़े पर बैठी, विगत की स्मृतियों से बाहर निकली टीवी चला कर बैठ गयी. कोविड-१९ करोना वायरस से हुई मौत का आंकड़ा देखकर उसे सिहरन होने लगी. इस विश्वव्यापी भयावह परिस्थिति का कब अंत होगा? उसकी आत्मा से एक गहरा नाद निकला.

'लीजिए चाय पीजिए!' उसके पति कुमार ने चाय और बिस्किट उसे थमाते हुए स्नेह से कहा तो वह अभिभूत हो उठी. सच में इस लॉकडाउन की अवधि में एक साथ रहने का जो सुख मिला है वो अनिर्वचनीय है. जिस पति ने कभी एक गिलास पानी भी ख़ुद से नहीं उठाया था वह आज चाय और नाश्ता बनाने में भी मदद करने लगे थे. कई बार बड़े-बड़े बर्तन भी धो दिया करते थे, सब्ज़ियां भी काट दिया करते थे. पति का यह रूप देखकर रीना का मन नाच उठता था. शाम को घर के बाहर बने छोटे से बग़ीचे में बैठे पति के साथ तरह-तरह के पंछियों का गुंजन सुनती, हवा का आनंद लेती वो एक नयी दुनिया में जी रही थी. उसे लगने लगा था यह ईश्वर की महति कृपा है इस तरह के बंद वातावरण में भी उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों के बंधन खोल दिये थे. अब हमेशा कभी ननदों का कभी बहनों का, कभी दोस्तों का फ़ोन आता रहता सब एक दूसरे का हालचाल पूछते रहते. जो जीवन की आपाधापी में सब कुछ भूल चुके थे, एक दौड़ में न जाने कहां दौड़े चले जा रहे थे. सहसा थम कर एक दूसरे की अहमियत को समझने लगे थे. तुम कहां हो मानसी? सच! अब मिल जाती तो हम दोनों जीवन की कितनी खट्टी-मीठी बातें और अनुभवों को साझा करते, जीवन में एक सच्चा दोस्त होना बहुत आवश्यक है. उसके अंतर्मन से जैसे एक गहरा स्मृतियों का सागर निकल पड़ा. आंखें छलक उठीं.

फिर अगले कई दिनों तक वह पुराना एल्बम निकाल कर अपनी और मानसी की, मानसी के विवाह की, मानसी के बच्चे की ढेर सारी तस्वीरों को देखती रही और ईश्वर से प्रार्थना करती रही, काश मानसी का कोई तो संकेत मिल जाए. दिल बार-बार पुकार रहा था कहां हो मानसी? लॉकडाउन के बीस दिन बीत चुके थे. यूनिवर्सिटी के वेबसाइट पर अपना लेक्चर अपलोड करके रीना ने टीवी ऑन किया और महत्वपूर्ण समाचार देखने लगी. अचानक एक समाचार पर उसकी दृष्टि थम गयी. 'प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता और 'सुमन-सुवास' फॉउंडेशन की अध्यक्ष डॉ. मानसी वर्मा के योगदान को देश कभी नहीं भूल सकता. हम इस स्त्री के धैर्य और साहस को सलाम करते हैं, जिसने अपने पति और इकलौते बच्चे को खोकर भी हौसला नहीं खोया. अपनी सारी संपत्ति 'सुमन–सुवास ट्रस्ट' को दान करके अभी

कोविड-१९ करोना पेशेंट्स के लिए युद्ध लड़ रही हैं. उनकी संस्था गांव-गांव जाकर कोविड-१९ के प्रति लोगों को जागरूक करती है... ग़रीबों को अन्नदान करती है. रक्तदान करती है और लोगों को रक्तदान करने के लिए प्रेरित भी करती है और यहां तक कि इस संस्था के सदस्य अस्पतालों में जाकर सेवा भी करते हैं.

'ए ईश्वर! तूने मेरी सुन ली... यह तो मानसी ही है... मेरी मन्नू... पर यह उद्घोषक क्या बोल रहे हैं? इसके जीवन में ऐसी कैसी परिस्थिति आ गयी? रीना का मन हाहाकार कर उठा था. साथ ही अपनी प्रिय सहेली से मिलने की इच्छा भी बलवती हो उठी थी. टीवी पर मानसी की छोटी सी स्पीच प्रसारित हो रही थी जिसमें वह कह रही थी की, 'धूप छांव से भरे इस जीवन के कई रंग मैंने देखे हैं. निष्कर्ष यही है कि ज़िंदगी बहुत ख़ूबसूरत है. मानवता की सेवा करके हम अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं..!' रीना ने इंटरनेट की मदद से संस्था का पता और फ़ोन नंबर निकाल लिया और प्रतीक्षा करने लगी कि कब लॉकडाउन खुले और वह जाकर मानसी से मिले. उसने धड़कते दिल से फ़ोन लगाया,'हेलो'.

'कौन'.

'मैं रीना..!'

'र..री..ना..? कौन रीना?'

'मनु मैं सुमन...!'

'मेरी सुमन...? कहां है तू? कैसी है', मानसी ने एक साथ कई सवाल पूछ डाले.

'मैं तो ठीक हूं पर नाराज़ हूं तुमसे, अपना फ़ोन बंद करके, किसी भी तरह के पत्र व्यवहार को ना करके अचानक कहां चली गयी थी इतना ढूंढा तुम्हें?' रीना लगभग रो पड़ी थी.

'बहुत लंबी कहानी है जब मिलेंगे तो बताऊंगी वैसे मेरा पता कैसे मिला?'

'टीवी पर तुम्हारा, तुम्हारी संस्था 'सुमन-सुवास' के बारे में सुना. सुनकर तुम्हारे ऊपर बहुत गर्व हुआ साथ ही तुम्हारी स्थिति जानकर दुख भी हुआ कैसे हुआ और कब? और संस्था के नाम में अपना नाम देखकर तो मैं भाव विभोर हो गयी, वो अधीर हो उठी थी. उसकी आंखों में उस दिन का दृश्य घूम गया था जब मानसी ने उससे पूछा था, 'लोगों के तो एक ही नाम होते हैं... तुम्हारे दो-दो नाम, रीना और सुमन? तो उसने हंस कर कहा था , 'मेरी मां को रीना नाम पसंद था और पिताजी को सुमन तो दोनों ने मिलाकर मेरा नाम रख दिया!'

'लेकिन मुझे भी सुमन ही पसंद है मैं भी तुम्हें सुमन ही कहा करूंगी.'

रीना वर्तमान में लौटी और कहा,'लॉकडाउन ख़त्म होते ही तुमसे मिलूंगी... अभी कुछ तो बताओ अपने बारे में... तुमसे मिलने दिल्ली आना होगा, मैं दिल्ली से सैकड़ों मील दूर रांची में हूं फ़्लाइट खुलते ही पहली फ़्लाइट से तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगी पर मुझे सब कुछ सुनना है अभी इसी वक़्त.'

'हां ! पर वर्षों की पीड़ा एक बांध में बंधी है. धीरे-धीरे परतों को हटाना होगा. नहीं तो ऐसा सैलाब आएगा, जो मुझे फिर से वेदना के सागर में डुबा कर बहा ले जाएगा. इसलिए धैर्य धरो सखी! धीरे-धीरे सब कुछ बताऊंगी!' मानसी का स्वर पीड़ा से कातर हो उठा था. उसने कहा 'अभी के लिए बस इतना समझ लो सुवास मेरे बेटे का नाम है और सुमन तुम... तुम दोनों ही तो मेरे जीवन के दो स्तंभ हो. इसलिए सुमन–सुवास है मेरी संस्था का नाम.'

धीरे-धीरे जब समय मिलता, दोनों आपस में सुख-दुख बांटती... कतरा-कतरा कहानी बह रही थी. रेशा-रेशा दर्द पिघल रहा था.

फिर जब हृदयगत पीड़ा के बांध पूरे खुल गये, और वेदना का झरना बह निकला तो ऐसी कथा सामने आयी जिसने डॉ. रीना सुमन को झकझोर कर रख दिया.

विवाह के बाद बहुत मुश्किल से पारिवारिक तालमेल बिठा रही मानसी को बार-बार मायके ससुराल आना-जाना करते रहना अच्छा नहीं लगता था लेकिन जहां वह अपने स्वभाव से लाचार थी वहीं उसका पति अपने इगो से बंधा हुआ था. दोनों में से कोई झुकने को तैयार ही नहीं था. छोटी-मोटी लड़ाई ने अब बड़ा रूप धारण कर लिया था. हद तो तब हो गयी जब एक दिन पति ने मानसी पर हाथ उठा दिया. फिर सब कुछ अनचाहा घटता गया. किसी तरह रिश्ता निभा रहे थे दोनों बेटे की ख़ातिर. और अंततः एक विवाह समारोह से लौटते हुए हुए भीषण एक्सीडेंट में मानसी ने अपने पति और बच्चे को खो दिया और स्वयं बुरी तरह घायल होकर महीनों अस्पताल के बेड पर पड़ी रही. ससुराल में बूढ़े सास-ससुर के अलावा कोई नहीं था. ऐसे में

माता-पिता और भाई सहारा तो बने पर एक साल बीतते-बीतते मानसी को अहसास हो चला था कि विवाह के बाद चाहे जैसा भी हो ससुराल ही अपना घर होता है. भाइयों की शादी हुई, भाभियां घर आ गयीं तो मानसी सबको बोझ लगने लगी. वैसे भी अपना सर्वस्व खो कर मानसी की स्थिति किसी पागल से कम नहीं थी.

ऐसे में वह कई ज्योतिषियों के यहां चक्कर लगाने लगी और जब प्रकांड पंडित मुरलीधर शास्त्री ने उससे कहा कि उसके जीवन में राहु और केतु का भयंकर साया है. ऐसे व्यक्ति जीवन के प्रति संवेदना को खो देते हैं और आत्महत्या तक करने पर विवश हो जाते हैं. जीवन में बहुत–सी कठिनाइयां आती हैं, लड़ते-लड़ते थक चुका व्यक्ति जीवन को समाप्त करने की राह में बढ़ जाता है.

'क्या?' मानसी हतप्रभ रह गयी थी.

'आत्महत्या? नहीं मैं ऐसा कभी नहीं करूंगी.'

पंडित ने कहा, कि आपके जीवन में बहुत-सी परेशानियां है ऐसे में आपका जीवन के प्रति मोह ख़त्म हो जाएगा. उसने ज्योतिषी के हाथ से अपनी जन्म कुंडली खींच ली और कहा, 'ऐसा कुछ नहीं होगा मिथ्या भाषी होते हैं आप लोग.'

'बेटी! कुंडली में तो यही लिखा है पर हां! ईश्वर ने जन्म, मृत्यु, विवाह, रक्त संबंध सब कुछ अपने हाथ में रखा है... पर अपना जीवन ख़त्म करने या अपना उत्थान करने की शक्ति मनुष्य के ऊपर छोड़ दी है.. ऐसे में यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह जीवन से युद्ध करता है या जीवन का युद्ध हार जाता है, और स्वयं अपनी हत्या पर विवश हो जाता हैं.'

'नहीं! नहीं! मैं आत्महत्या नहीं कर सकती!'

'तो जीवन का युद्ध लड़ो! किसी भी परिस्थिति में शास्त्र झूठ नहीं कहते बेटा!' पंडितजी ने कहा था और मानसी ने उसी दिन ठान लिया था चाहे परिस्थिति कैसी भी हो वो हिम्मत नहीं हारेगी. वह हर विकट परिस्थिति से लड़ेगी.

उसके बाद तो जैसे उस पर दुखों का पहाड़ ही टूट पड़ा. हृदयाघात से पिता की मृत्यु और उनकी मृत्यु के कुछ महीने बाद मां की मृत्यु ने मानसी को तोड़ कर रख दिया था. उसका मनोबल खंड-खंड होकर बिखर चुका था. उसकी मुट्ठी में ससुराल था ना मायका. इस बड़ी-सी दुनिया में वह नितांत अकेली रह गयी थी. कई बार दुर्बल क्षणों में उसने जीवन शेष करने के बारे में सोचा लेकिन ज्योतिषी की बात याद आते ही पुनः हिम्मत के साथ उठ खड़ी हुई. 'नहीं आत्महत्या करना घोर पाप है, यह मैं नहीं करूंगी. मैं जीवन से लडूंगी. मैं कुंडली की बात को मिथ्या साबित करके रहूंगी.'

एक दिन उसने गंभीरता से सोचा और बूढ़े सास-ससुर की सेवा करने का संकल्प मन में लेकर ससुराल के गांव की ओर चल दी. उसने सोचा था वे लोग उसे देखकर क्रोधित होंगे, अच्छा महसूस नहीं करेंगे अपशब्द कहेंगे... शायद उसे घर से भी निकाल दें... पर वहां हुआ इसके विपरीत. बूढ़ी सास ने उसे अपने कलेजे से भींच लिया और ससुर ने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुमने बहुत सही निर्णय लिया है बेटी, यही तुम्हारा घर है. तुम हमारे पोते की मां और हमारे बेटे की पत्नी हो.. हमारा दुर्भाग्य कि वह आज नहीं है, पर हम तो हैं ना और हमारी कुल लक्ष्मी तुम तो हो ना. हम तुम पर कभी जोर जबरदस्ती करना नहीं चाहते थे सोचा, जब तुम्हारी आंखें खुलेंगी तो तुम यहां ज़रूर होगी हमें विश्वास था. और आज हमारी बिटिया हमारे घर आ गयी.'

बिलख-बिलख कर रोती मानसी ने सास–ससुर के चरणों में सर्वस्व सौंप दिया.

बस यहां से मानसी की ज़िंदगी का रुख़ दूसरी दिशा में मुड़ गया. यह बात बिल्कुल सच साबित हुई थी कि अपना उत्थान या पतन केवल मात्र मनुष्य के हाथ में होता है. ससुराल में कई एकड़ ज़मीनें थीं, आम के बग़ीचे थे, मछली पालन के तालाब थे और मखाना उत्पादन भी होता था. ससुर के साथ धीरे-धीरे मानसी ने सब कुछ संभालना सीख लिया था. उन तीनों की ज़िंदगी एक ढर्रे पर आने लगी थी. ससुर को एक सशक्त हाथ मिल गया था और मानसी को सहारा. घर में रुपया-पैसा, धन-दौलत किसी चीज़ की कमी नहीं थी. यहां उसने देखा कि उसके ससुर हर रविवार को ग़रीबों की बस्तियों में, वृद्धाश्रमों और अनाथालय में जाकर अन्न-वस्त्र दान किया करते थे. कई ग़रीब बच्चों को पढ़ाने का भी ज़िम्मा उन्होंने ले रखा था. बार-बार एक ही बात दोहराते थे, 'ईश्वर ने हमें इतनी संपत्ति ग़रीबों की देखभाल के लिए ही तो दी है. शास्त्रों में भी कहा गया है भूखे को भोजन कराने से बड़ा पुण्य कोई दूसरा है ही नहीं.' जिस दिन पहली बार मानसी ने अपने हाथ से अन्न वस्त्र दान

किये थे उस रात उसे बहुत चैन की नींद आयी थी. वर्षों बाद उसने राहत की सांस ली थी. बीते दिनों में मानसी समझ गयी थी, ईश्वर प्रदत्त यह ज़िंदगी बहुत अनमोल है. जो भी रिश्ते ईश्वर ने प्रदान किये हैं वहां अहम को भूल कर एक साथ ख़ुशी-ख़ुशी जीना ही जीवन है. क्योंकि ईश्वर न जाने कब कैसे और कहां किसकी मुट्ठी से क्या वापस ले ले, किसी को पता नहीं होता है काश! उसने अपने पति के साथ अच्छा समय गुज़ारा होता! उसकी आत्मा कभी-कभी दंश से भर उठती थी. फिर एक दिन ऐसा आया जब उसे सारी संपत्ति का वारिस बनाकर सास-ससुर भी दुनिया से चले गये.

'सुमन! मैं इस बात को अच्छी तरह समझ गयी थी कि ईश्वर ने मुझे दुखी और पीड़ित मानवता की सेवा के लिए चुना है और हमारे वेद भी तो कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक आत्मा होती है... और मैं भी एक आत्मा हूं... और मुझे कोई हरा नहीं सकता. मैंने एक ट्रस्ट बनाया और अपनी सारी चल और अचल संपत्ति ट्रस्ट को दान कर दी. 'सुमन सुवास' नाम का यह ट्रस्ट अब ग़रीबों, दुखियों और पीड़ितों की सेवा करता है... और इसमें ही सुख पाता है. और सच कहती हूं सुमन! पीड़ितों की सेवा में जो आनंद है, वह संसार की किसी वस्तु में नहीं. आज हमारा देश कोविड-१९ से उपजी महामारी को झेलने के लिए विवश है और ऐसे में अगर मेरी संस्था थोड़ी-सी भी मदद कर पाती है तो यह हम सबके लिए बहुत बड़े गौरव की बात है.'

मानसी ने कहा तो सुमन बोली, 'सच कहती हो, मैंने तो आज तक इस बारे में कभी सोचा ही नहीं. अब मैं भी दुखी और मजबूर लोगों के लिए कुछ करना चाहती हूं.'

'यह तो बहुत अच्छी बात है और देखो आज दुखी और बेसहारा लोगों की सेवा ने मुझे कितना बड़ा संबल दिया है. मैं जीवन का सही अर्थ समझ पायी हूं, और सेवा का फल देखो. तुम्हारी जैसी मित्र से फिर से मुलाकात हो गयी. सच में मैं भी हिम्मत हार बैठी थी. एक यात्रा के दौरान मेरा बैग चोरी हो गया उसमें मेरा मोबाइल, सारे फ़ोन नंबर मेरी डायरी सब कुछ थी. जिसने हमारे संपर्क को तोड़ दिया था. फिर मेरे जीवन में घटती विडंबनाओं ने मुझे वक़्त ही नहीं दिया. यह तो ईश्वर की असीम कृपा और हमारा स्नेह है जो आज हम फिर से मिल सके. सच कहती हूं सुमन

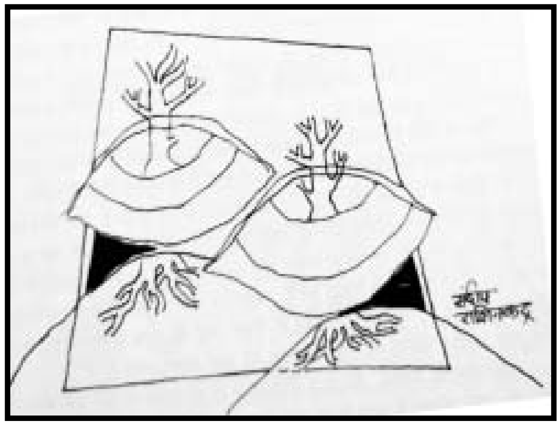

मानवता की सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं. चल ठीक है अब मैं फ़ोन रखती हूं क्योंकि मुझे अस्पताल जाना है करोना से पीड़ित लोगों को फल और दवाएं देनी हैं, और सभी डॉक्टरों, नर्सों सबका उत्साह बढ़ाना है कि इस विकट घड़ी में हम सब करोना योद्धाओं के साथ हैं.'

'हां मनु! मुझे भी प्रतीक्षा है उस घड़ी की जिस दिन मैं तुमसे मिल सकूंगी. मैं भी तुम्हारे काम में हाथ बंटाना चाहती हूं.'

'हाथ तो तुम अब भी बंटा सकती हो.'

'वह कैसे?'

'अपने शहर के करोना योद्धाओं की यथासंभव मदद करके उनका हौसला बढ़ाकर.' मानसी ने कहा तो सुमन ने उत्साहित होकर जवाब, 'ज़रूर मनु! सुमन की सुवास ना फैले, ऐसा कभी हुआ है क्या? सुमन है तो सुवास यानि सुगंध तो निश्चित है...'

दोनों सखियों की समवेत हंसी गूंज उठी, जिसमें यह सच्चाई प्रतिध्वनित हो रही थी कि, चाहे कैसी भी विकट परिस्थिति हो उसका समाधान निश्चित है. रीना के कानों में वर्षों पहले मानसी द्वारा बार-बार गुनगुनाया जाने वाला गाना प्रतिध्वनित हो उठा था... ये जीवन है... इस जीवन का... यही है रंग रूप... थोड़े गम हैं... थोड़ी ख़ुशियां... यही है... छांव-धूप...

द्वारा श्री शंभूनाथ झा,
उर्सुलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,
पूर्णिया-८५४३०१(बिहार)
ईमेल : nirupamaroy25@gmail.com
मो. ८००२७४७५३३

कविता

तुम साथ दोगी ना...?

✍ बबीता शेरेवाला गुप्ता

चाहे कोई क़रीब हो,
या चाहे दूर,
सुनो प्रियतमा,
तुम इस सफ़र में साथ दोगी ना ?

बेटा विदेश नौकरी में है,
पढ़ा-लिखा सक्षम भी है.
खुश है वो अपने परिवार के संग,
फिर तू क्यों उदास-सी है.
नये जीवन की इस दौड़ में संग क़दम रखोगी ना ...
सुनो प्रियतमा,
तुम इस सफ़र में साथ दोगी ना ?

उम्र की यह अंतिम सीढ़ी है,
तुम साथ हो मेरे, निःशब्द प्रेम भी है.
ना रोओगी तुम अब किसी और की खातिर,
क्या तुम मेरा और अपना ख्याल रखोगी ना ...
सुनो प्रियतमा,
तुम इस सफ़र में साथ दोगी ना?

जब थक जाऊं या बरस उठे नयन,
हाथ तुम अपना थमा देना.
रुकेंगे क़दम जब-जब तेरे,
मेरे कंधों पर रखकर हाथ तुम चल दोगी ना ...
सुनो प्रियतमा,
तुम इस सफ़र में साथ दोगी ना?

तुम बिन मैं अकेला रह जाऊंगा,
तन्हा थम जाएंगी सांसें, मेरी,
'कहो...सुनती हो ....!!!' किससे कहूंगा ?
आंगन में सदा-सी पायल की झंकार गूंजेगी ना ...
सुनो प्रियतमा,
तुम इस सफ़र में साथ दोगी ना?

(श्याम दीवानी), बीकानेर (राज.)
मो. : ९१६९७४२२३.

ग़ज़लें

✍ मनाज़िर हसन 'शाहीन'

(१)

माहौल है नफ़रत का तारीक भी काला भी,
ऐसे में बिखेरें हम, चाहत का उजाला भी.

हमसाया अगर सूखी रोटी को तरसता हो,
भाता ही नहीं मुझको सोने का निवाला भी.

दुनिया-ए-कशाकश में मर्कज़ हैं मुहब्बत के,
आबाद रहें दोनों मस्जिद भी शिवाला भी.

जब दिल के चिराग़ों में रोग़न ही न हो अपना,
कुछ काम नहीं आता, मांगे का उजाला भी.

जो ख़ुद को सजाता हो किरदार के ज़ेवर से,
उस शख़्स के क़दमों में झुकता है हिमाला भी.

गुलहा-ए-मुहब्बत दे हर हाल में दुनिया को,
गूथेंगे जहां वाले फिर प्यार की माला भी.

(२)

दयानत है कि मेहनत चाहती है,
हवस लम्हों में दौलत चाहती है.

अगर चाहे, अभी सैराब कर दे,
घटा जज़्बे की शिद्दत चाहती है.

बिखरने टूटने से भी नहीं ख़ुश,
ये दुनिया क्या क़्यामत चाहती है.

करोगे कब तलक नफ़रत की खेती,
मेरी दुनिया मुहब्बत चाहती है.

जहन्नम बनती जाती है ये दुनिया,
ये उम्मत है कि जन्नत चाहती है.

पहुंच ही जाएगी बाबे असर तक,
दुआ, अश्के-निदामत चाहती है.

मिडिल स्कूल लक्ष्मीपुर,
वाया : चाकंद,
जिला : गया-८०४४०४ (बिहार)
मो. : ९६६१२१४१११

हनी ट्रैप

राजेंद्र राजन

जन्म - १५ अगस्त १९५३, गांव बल्ह, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश.
शिक्षा : एम. ए. (हिंदी), एम. एम. सी. (पत्रकारिता), अनुवाद में डिप्लोमा एवं एफटीआईआई पुणे से फ़िल्म ऐप्रीसिएशन.

: कृतियां :
टापू, बंद दरवाज़े, फालतू के लोग, फूलों को पता है (कहानी संग्रह), सैलीब्रेशन (उपन्यास), हिमाचल की प्रतिनिधि कहानियां एवं बारह साक्षात्कार (संपादित), पंद्रह-बीस के जंगलों से (यात्रा संस्मरण); मुट्ठी भर धूप कहानी पर दूरदर्शन द्वारा टेली फ़िल्म का निर्माण. अनेक वृत्त चित्रों का निर्माण. 'खातरियां : विलुप्त होतीं जीवन रेखाएं' एवं 'द लॉस्ट रूटस' फ़िल्मों का अनेक अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सवों में चयन व प्रदर्शन.

: प्रमुख सम्मान :
वर्ष २००७ में हिमाचल सरकार के भाषा व संस्कृति विभाग द्वारा पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी राज्य सम्मान से विभूषित.

: संप्रति :
स्वतंत्र लेखन एवं साहित्यिक पत्रिका 'इरावती' का संपादन. 'मुस्कान चैरिटेबल ट्रस्ट' के संस्थापक एवं अध्यक्ष.

रात देर तक जगे रहना. नींद ना आना. क़िताबों में डूबे रहना. बस यही होता है मेरे साथ. सब कितना अव्यवस्थित. बिखराव भरा. अवसाद. नींद की गोलियां. व्यग्रता को शांत करने के वास्ते मैं क्या-क्या न करता?

बस यूं ही बेसबब-सा. इतवार का दिन. छुट्टी का दिन. ख़ुद को रिलैक्स करने का वक़्त. जब मन होता है कि अलविदा कहती हुई सर्दियों की गुनगुनी धूप में अदरक, लौंग, इलायची की चाय का लुत्फ़ उठाया जाए.

सुबह नौ बजे का वक़्त रहा होगा जब मैं इज़ी चेयर पर आराम फरमाते हुए चाय का आनंद ले रहा था कि तभी फ़ोन की घंटी घनघना उठी. ये मुआ मोबाइल भी तमाम मुसीबतों की जड़ है. हर वक़्त डिस्टर्ब करता रहता है. रात सोने से पहले मैं फ़ोन बंद कर देता हूं और सुबह जगने के बाद भी काफ़ी देर बाद उसे खोलता हूं.

अपरिचित नंबर. अनजान महिला का मीठा-सा मिश्री घुला स्वर. लगा आज दिन अच्छा गुज़रने वाला है. वो कहते हैं न आगाज़ अच्छा है तो शायद अन्जाम भी बेहतर होगा.

'जी वो आपका इश्तहार छपा है आज अख़बार में.'

'इश्तिहार? जी वो शायद आप भूल गये कि आपने एक मेड सर्वेन्ट के लिए एड दी थी अख़बार में.'

'अरे हां याद आया. मुआफ कीजिएगा. बताएं ख़ुद के बारे में. नौकरी के लिए इन्टरेस्टड हैं आप?

'बाबू जी. मैं अपने लिए नहीं पड़ोस की एक लडकी के बारे में बात करना चाहती हूं.'

'अरे आप उसे ही कहो न बात करने को! जिसे नौकरी करनी है, वही बात करे तो ठीक रहेगा न.'

बाबूजी, बात तो ठीक है पर वो शर्माती है. गांव की है न. ज़्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है. मुझसे बोली. बात करके देखना. ठीक लगे तो आ सकती है वो.

'देखिए मैडम. घर में बूढ़ी मां है. नब्बे साल की. उसकी देखभाल के लिए नर्स की तरह काम करने वाली एक मेड सर्वेन्ट चाहिए. ज़रूरतमंद.

'ठीक है बाबू जी. तनख़्वाह क्या होगी?'

'यही दस हजार के आसपास. घर में ही रहना होगा.'

'तो ये तो चौबीस घंटे की नौकरी हुई ना. कम नहीं हैं दस हज़ार?

अरे मैडम खाना-पीना, रहना, कपड़ा लत्ता इनका ख़र्चा भी तो होगा. पांच-सात हज़ार. दस हज़ार तो अलग से हैं न. समझो सारी तनख़्वाह की बचत.'

'बाबूजी. तब तो ठीक है. बात कराती हूं उसकी मैं आपसे. वैसे मैं उसकी मुंहबोली आंटी हूं. सुरभि नाम है उसका. दस जमात पढ़ी है. मां-बाप नहीं हैं बेचारी के. अपने शराबी-कबाबी भाई के साथ रहती है. जब वो रात को घोड़े पर सवार होता है तो अपनी सगी बहन को भी दबोचने के लिए छीना झपटी करने लगता है. पुलिस आ चुकी है कई बार. पर वो साला हरामजादा सुधरता ही नहीं. आपके यहां रहेगी तो शायद उस पर अत्याचार न हों. दो पैसे उसके खाते में होंगे तो अच्छा लड़का भी मिल सकता है.'

'आपका नाम क्या है?'

'बाबू जी मेनका.'

'मेनका?' मैं चौंका जैसे मुझे करंट लगा हो.

'क्यों नाम सुनते ही डर गये बाबूजी.'

'नहीं वो बात नहीं पर...'

'पर क्या? अब सुरभि ने नौकरी करनी ही है तो अपणा नाम भी बताएं. कारोबार. घर में कोण-कोण है?

'जी, मेरा नाम विश्व है.'

'विश्व! ये क्या नाम हुआ?'

'विश्व यानी विश्वामित्र.'

'वाह क्या बात है बाबूजी. ये विश्वामित्र और मेनका की कहानी तो इतिहास में पढ़ी थी. स्कूल में. लाख चाहकर भी विश्वामित्र साधु-संत होते हुए भी स्वयं को मेनका के रूप और जाल से बचा नहीं पाये थे.'

'आप कहना क्या चाह रही हैं?'

'कुछ नहीं बाबूजी. आज का ज़माना बहुत ख़राब है. हर कोई नामों के पीछे क़िस्से, कहानियां ढूंढ़ते रहते हैं. ठीक है. लंबी बात हो गयी.

'मैडम मेनका जी. आप सुरभि से बात करा दीजिएगा शाम को. अरे हां, मैं तो पूछना भूल ही गया आप क्या करती हैं?

'जी फिर किसी दिन. सब पहले ही दिन वो भी फ़ोन पर जान लेना ठीक नहीं है. मन के किवाड़ अहिस्ता-आहिस्ता ही खुलें तो अच्छा है न.'

'जी वो तो ठीक है. आप वो सुरभि की वकालत कर रही हैं तो आपके बारे में भी जानने की इच्छा हुई.'

'बाबू जी आज इतवार है न. घर में सौ काम हैं. साफ़-सफ़ाई. कपड़े धोना. ख़ुद को संवारना. बात करती रहूंगी. बस मेरा नंबर सेव कर लेना. मेनका ठाकुर. जलोड़ी पास.'

'अरे हां मैं भी कितना भुलक्कड़ हूं. आपके शहर का नाम पूछना तो भूल ही गया.'

'बाबू जी कोई बात नहीं. परदा धीरे-धीरे खुलेगा. वैसे मैं शहर में नहीं, गांव में रहती हूं. कुल्लू में जलोड़ी पास है एक जगह. उसके पास ही गांव है. आजकल यहां बर्फ़ ही बर्फ़ है. गर्मियों में टूरिस्ट आते हैं ख़ूब यहां. झील है कुछ मील दूर उसे देखने. सलोसर है उसका नाम.'

'अरे वाह आप तो बहुत दिलचस्प औरत हो. पहली ही मुलाकात यानी फ़ोन पर ही सही, मेरा दिल जीत लिया. किसी दिन मेरे यहां चक्कर लगा जाओ सुरभि के साथ.'

'इतना उतावलापन भी ठीक नहीं है. धीरज रखें बाबूजी. कहकर उसने फ़ोन काट दिया. समस्त वार्तालाप के विश्लेषण के बाद मुझे लगा मैं सचमुच ही बेवकूफ़ क़िस्म का आदमी हूं. दिल फेंक आशिक की तरह. यकायक मेरी रुचि मेनका में बढ़ने लगी थी. ये औरत जात भी अजब-ग़जब है. ज़रा-सा मीठी ज़वान क्या बोल दी मर्द तो बस फिसलने लगता है. काई पर अचानक पैर के आ जाने के समान. ना मालूम कब कोई दुर्घटना हो जाये?'

ये मेनका का किरदार मेरा पीछा करने लगा था सोते, जागते, उठते, बैठते मैं उसी के बारे में सोचने लगा. फिर मछली ख़ुद ही जाल में फंस रही है तो क्या हर्ज़ है. यूं भी मैं अकेला ही तो था. बीबी बरसों से जुदा रह रही है. दस साल से कोर्ट में तलाक का मामला अटका पड़ा है. आख़िर मुझे भी तो अपनी ज़िंदगी जीने का हक़ है. कब तक यूं ही

अकेला भटकता रहूंगा? कोई एक हमसफ़र तो चाहिए. सच्चा दोस्त. या प्रेमिका जिससे सुख-दु:ख साझा कर सकूं.

सोचा मेनका को फ़ोन लगा ही लूं. सुरभि के बारे में भी जानकारी ले लूंगा. पर दूसरे ही क्षण मुझे ये बेजा-सी हरकत लगी. पागलपन. स्वाभिमान सर्वोपरि है. उस पर आंच नहीं आनी चाहिए. कौन जाने क्या सोचे? मुझे कहीं आवारा मर्द, मजनूं या देलफेंक आशिक न समझ बैठे? मैं चाहता था मेरी ख़ामोशी ही सब कुछ बयान कर दे.

जब एक हफ़्ते तक मेनका का फ़ोन नहीं आया तो मैंने ख़ुद ही डरते-डरते एक दिन फ़ोन मिलाया, 'जी मेनका जी', घबराहट में मेरी ज़बान फिसली जा रही थी. जैसे मैंने कोई अपराध कर डाला हो. मौजूदा माहौल में औरत से अगर सलीके से बात न हो तो कभी-कभार आ बैल मुझे मार जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है. तिरिया चरित्र का क्या भरोसा? कब कोई बखेड़ा खड़ा कर दे और लेने के देने पड़ जायें?

'जी मैं बोल रहा हूं. विश्वा. चंबा से.'

'बाबू जी. नमस्कार. मैंने सोचा आप भूल-भुला गये होंगे.'

'अरे नहीं. मैं तो आपके फ़ोन का इतज़ार कर रहा था. वो सुरभि के बारे में जानना चाह रहा था. तैयार है क्या नौकरी के लिए.'

'बाबू जी. क्या बताऊं ये आज कल की छोकरियों का कोई भरोसा नहीं है. पहले कहा कि मैं नौकरी करने के लिए तैयार हूं. अब मुकर रही है. किसी लड़के के चक्कर में फंस गयी है. वो साले कमीने ने उसे बरगला दिया है. कहता है 'सुरभि तुझे नौकरी-वौकरी करने की क्या ज़रूरत है? नब्बे साल की बुढ़िया की सेवा में खपा देगी अपनी जवानी. बस मुझे नौकरी लगणे दे. ब्याह कर ले जाऊंगा तुझे.'

'मैं तो मेनका जी बड़ी उम्मीद लगा कर बैठा था. मैं तो अपणी बीमार मां की देखभाल के लिए परेशान हूं. मालूम नहीं क्या परेशानी है? जो भी लड़की मिलती है दो-चार महीने में ही घर लौट जाती है.'

'ज़रूर. आपकी मां में कोई कसूर होगा. बूढ़ी औरतें जवां लड़कियों को कहां सहन कर पाती हैं? फिर मालूम नहीं आपके घर का माहौल कैसा है? बच्चों को प्यार, दुलार, लाड़ से रखना पड़ता है?

'नहीं मेनका मैडम. यहां सब ठीक है. मेरी मां तो साक्षात देवी है. कभी किसी से, ऊंचे सुर में बात नहीं की.'

'चलो छोड़ो उसको. ज़बरदस्ती तो नहीं हो सकती न. वो आपकी घरवाली देखभाल नहीं कर सकती मां की?'

'मेनका का तीर निशाने पर बैठा था. शायद मैं इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था. समझ नहीं आया क्या उत्तर दूं.

'जी वो अलग रहती है. दिल्ली में.'

'क्यों?

'बस बनी नहीं हमारी. तलाक का मामला चल रहा है कोर्ट में.'

'बाबू जी. मुआफ करना. आपकी दु:खती रग पर उंगली रख दी मैंने.'

'नहीं कोई बात नहीं. अपणा बताओ क्या कर रही हो आजकल? काम-वाम क्या है.'

क्या करणा है बाबूजी. घर वाले ने छोड़ दिया था बीस साल पहले. अकेले ही रहती हूं. मायके में. मां-बाप का साया भी उठ चुका है.'

'आपकी उम्र क्या होगी.'

'पैंतीस साल. ब्यूटी पार्लर खोल रखा है.'

'गांव में चलता है ब्यूटी पार्लर?

'क्यों नहीं बाबूजी. गांव की औरतों को कम समझते हैं क्या? ख़ूब बन ठन के रहती हैं और फिर अब तो गांव और शहर का फ़र्क मिट चुका है.'

'हां ठीक कर रही हो. पहाड़ में गांव क्या शहर. सब एक-दूसरे में गड़-मड़ हो गये हैं. फिर गांव की औरतें तो शहर की औरतों को मात दे रही हैं.'

'आप ठीक कह रही हैं. पर दूसरी शादी क्यों नहीं की. कैसे काट रही हो अपनी ज़िंदगी?

'क्या बताऊं. बाबूजी. गांव की औरतों पर तो हर किसी की नजर रहती है. ज़रा-सा किसी से हंस खेलकर बात भी कर ले तो कई नज़रें एक साथ उठ जाती हैं. सती सावित्री की तरह हर क़दम फूंक-फूंककर रखना पड़ता है. दूसरी शादी करके भी क्या होगा. वो भी पहले की ही तरह दुष्ट, जालिम, अत्याचारी निकला तो. बस एक बेटा है. बंगलौर में पढ़ रहा है. जो कमाती हूं उसकी पढ़ाई पर ख़र्च कर देती हूं. फिर जो आज़ादी अकेले रहकर ज़िंदगी को जीने और उसे एंजॉय करने में है वो बंधन में कहां? बाबू जी ज़िंदगी को दूसरा नाम मस्ती तो ही है.'

'अरे भई, कोई तो आया होगा तुम्हारी ज़िंदगी में. वाट्सएप पर जो फ़ोटो तुमने भेजे हैं उन्हें देखकर तो तुम कोई ब्यूटी क्वीन लगती हो.'

'बाबूजी. कोई मिला ही नहीं ढंग का जिसे मैं अपनी दोस्ती के काबिल समझती. सब लूट खसूटने वाले हैं. औरत को शिकार ही समझते हैं सब. आप क्या जाणो दिल, दिमाग़ देह पर ही बेहिसाब खरोचें लेकर जी रही हूं. ख़ैर छोड़ो मेरी कहानी में आपकी दिलचस्पी क्यों होगी. अपणा बताओ क्या करते हो?'

'कुछ ख़ास नहीं. छोटा-मोटा बिल्डर हूं, घर बना-बनाकर बेचता हूं.'

'वाह क्या बात है. घर बनाते हो और अपने ही घर में सूनापन पसरा है. क्या ये घर ईंट, पत्थर, सीमेंट की दीवारों के ही होते हैं. घर तो भावनाओं से बनते हैं. जहां प्यार और मोहब्बत के अफ़साने जन्म लेते हैं. एक-दूसरे से सुख-दु:ख में शरीक होने की चाहतें परवान चढ़ती हैं. क्या बताऊं आप भी सोचेंगे ये पागल औरत है.'

'अरे वाह. तुम तो दार्शनिक हो. बुद्धिजीवी. बड़ी-बड़ी बातें करती हो. काश मेरी ज़िंदगी में भी तुम्हारे ख़्यालों, ज़ज़्बात की कोई ख़ूबसूरत औरत होती तो ज़िंदगी की राहें कितनी आसान हो जातीं.'

'कुछ लोग जानकर भी अनजान बने रहते हैं. नादानी का नाटक करते हैं. पढ़े-लिखे हो इशारा नहीं समझते.'

'ठीक है. फिर बात करते हैं. मुझे एक मीटिंग में जाना है. कुछ प्रेजेंटेशन्स तैयार करने हैं.' कहकर मैंने फ़ोन काट दिया.

तो क्या मेनका वही औरत है जिसकी मुझे लंबे वक़्त से तलाश है? या वो कोई मायावी औरत है जो किसी ख़ास मकसद से मेरे इर्द-गिर्द जाल बुनती जा रही है. मोबाइल, फ़ेसबुक, वाट्सएप, इंटरनैट की दुनिया भी कितनी रहस्यमयी है. हर क़दम पर ख़तरे ही ख़तरे. भरोसा करना बेहद मुश्किल. पर मेनका में कुछ बात तो है जो उसे गांव की नहीं बल्कि किसी संभ्रात परिवार से ताल्लुक रखने वाली औरत का भ्रम पैदा करती है. अगर उसे पाना है तो रिस्क तो लेना ही पड़ेगा. मुमकिन है उसे भी किसी ऐसे ज़हीन से, दानिशमंद इन्सान की तलाश हो जिसके लिए वो बीस साल से इंतज़ार कर रही है. 'मेड फॉर ईच अदर' की उक्ति शायद मेरे जीवन में यहीं चरितार्थ होनी हो? अगर वो बीस साल से कुंवारी–सी अवस्था का जीवन जी रही है तो उसे पाना ज़िंदगी का बेहद ख़ूबसूरत, हसीन सा तजुर्बा होगा. पहला नशा... पहला खुमार... सचमुच में तिलिस्म और रहस्य कितना शानदार था जिसकी मात्र अनुभूति से मैं भीतर ही एक अव्यक्त से रोमांच से भर उठा था. ऐसे क्षण में मुझे हरिवशंराय बच्चन की मधुशाला की वो पंक्तियां बरबस ही याद आयी. 'इस पार मधु है, उस पार प्रिय न जाने क्या होगा?'

मेनका का समूचा किरदार कितना पोशीदा था. किसी पुराने संदूक में सहेज कर रखे जेवरों-सा जो सालों-साल किसी नवयौवना के स्पर्श के लिए तरस जाते हैं. 'अलीबाला और चालीस चोर' की तिलिस्मी, जादुई कहानी-सा जिसका 'खुल जा सिम सिम' की ही तरह अनावृत्त होना लाजमी था.

मेनका के लिए मेरा अदृश्य आकर्षण व रोमांच बढ़ता जा रहा था. यह प्रेम था, आसक्ति या अंग्रेज़ी का शब्द इन्फैचुएशन जिसकी गिरफ़्त में ख़ुद को जकड़ा हुआ महसूस कर रहा था. कभी-कभी तो मुझे लगता शायद मैं किसी अजगर की जकड़ में हूं जो मेरी देह को 'चकनाचूर' करने के लिए आमादा है. चालीस की उम्र में यह पागलपन? ऐसा तो शायद बीस-पच्चीस की उम्र में होता होगा जब प्रेम की प्रतीति के अंकुर अंतर्मन में फूटने लगते हैं. मैं तो एक परिपक्व व्यक्ति हूं. पैंतालीस तो क्या जो मेरे खालीपन है, सूनापन है, रेगिस्तान या बियावान बिछा है उसमें मेनका की पदचाप मुझे परेशान किये जा रही है. मैं बड़े-बड़े लेखकों, चिंतकों व दार्शनिकों में अपने प्रश्नों के उत्तर खोज रहा था. आख़िर क्यों तुलसीदास ने औरत के बारे में इतनी क्रूर व्याख्या की होगी; 'ढोल, गंवार, शूद्र, नारी, सब ताड़न के अधिकारी?' पत्नी से मोहभंग के बाद ही तो तुलसीदास ने ऐसा लिखा होगा. अगर आज तुलसीदास जीवित होते तो शायद महिलाएं उनका घेराव कर लेतीं. उनके खिलाफ़ जंग छेड़ देतीं.

इस कहानी ने इक्कीसवी सदी के दूसरे दशक के अंत में जन्म लिया था और विश्वामित्र और मेनका एक होने के लिए मचल रहे थे. लेकिन ये मेनका मेरे लिए पहेली बनी हुई थी. जिसके राज़ को फाश करना मेरे लिए ज़रूरी था. लेकिन इस पहेली को बूझ पाना क्या इतना सहज था? जो बूझ पाया वो भव सागर पार हो गया.

इस बीच वो मेरे वाट्सएप पर अपनी ख़ूबसूरत तस्वीरें पोस्ट किये जा रही थी. मॉडलिंग के विभिन्न कोण. अर्धनग्न

देह के उभार, हिरणी-सी आंखें मांसल देह, ख़ूबसूरत चेहरा और झील-सी आंखें किसी देवलोक की अप्सरा.

लेकिन मैं यह यक़ीन नहीं कर पा रहा था कि ये मेनका वास्तविक है या किसी शरारती औरत ने मुझे ब्लैकमेल करने के लिए किसी और के ही फ़ोटो अपलोड कर दिये हैं. जो सामने था मेरे लिए वही सच था. शायद भ्रम में जीने का भी अपना ही सुख है. संभव है मेरी ज़िंदगी के रेगिस्तान में वह कोई सोता बनकर आ रही हो. फिर चाहत, प्रेम, प्यार, लगाव, आसक्ति की परिणिति तो देह सुख में ही है. अगर मेनका पंद्रह साल से परित्यक्ता का जीवन बसर कर रही है तो पहले स्पर्श में ही शायद उसकी देह बसंत की तरह खिल उठे. मैं अक्सर मेनका के देह सुख की संभावित अनुभूति के रोमांच से सिहर उठता. मुझे लगता वो मेरे बाहुपाश में है और मैं अभिभूत हूं. उस चरम सुख की कल्पना मात्र ही मुझे एक नये परी लोक में विचरण करने के लिए बाध्य कर देती?

सुरभि की अनुपस्थित हमारे दरम्यान पूरी शिद्दत से उपस्थित थी. अब तक मुझे समझ आ चुका था कि सुरभि का प्रसंग कपोल-कल्पित है और वो एक झूठी मनगड़ंत कहानी और किरदार के ज़रिए मुझ तक पहुंचना चाहती है.

एक दिन मैंने फ़ोन मिलाया.

'सुरभि पराग बनकर उड़ गयी क्या बगिया से?'

'हां ठीक कह रहे हो बाबूजी. उसका दूर का रिश्तेदार ले गया उसे. शादी की बात चल रही थी उसकी.'

'उसी लफंगे से जो उसे बहला-फुसला रहा था?'

'नहीं. अब कोई और है. मुझे देर से पता चला वो लूज़ करैक्टर लड़की है. गांव में उसकी बहुत बदनामी हो रही थी. आये दिन किसी नये लड़के से उसकी चर्चाएं जंगल की आग की तरह फैलने लगतीं. फिर ब्रेकअप. ख़ुदा जाने कितने ही बेशुमार लड़कों का बिस्तर गर्म कर चुकी होगी?'

'अगर वो मेरे घर मेड सर्वेन्ट बनकर आ जाती तो...'

'अच्छा हुआ न. नहीं आयी. फिर आप मुझे कोसते रहते जीवन भर. आजकल की लड़कियों से तो भगवान ही बचाए. चलो अच्छा हुआ बला टली. अपना सुणाओ क्या कर रहे हो आज कल?'

'कुछ नहीं. वो मुंबई जाना है. बिल्डर्स एसोशिएशन की मीटिंग है. उसी की तैयारी में हूं.'

'बाबूजी मुंबई, मुझे भी ले चलो न अपने साथ. एक-दूसरे को देख, समझ लेंगे. शायद फिर यह रिश्ता कोई हसीन मोड़ ले ले?'

मैं सोच में पड़ गया. यूं बात कर रही हैं जैसे उसका मुझ पर कोई अधिकार हो. या वो मेरी प्रेमिका हो. ये कुडी बेलौस, बिंदास है, बेफ़िक्र. इतनी आसानी से उसने मुंबई चलने का ऑफ़र दे दिया. या ज़िद सी पकड़ ली. ये लड़की जरूर 'चरित्रहीन' है. कोई संस्कारी, चरित्रवान या फिर लाज शर्म हया या परदा रखने वाली औरत इस तरह ख़ुद को तुरंत ऑफ़र नहीं करती. मेरी आत्मा ने मुझे धिक्कारा. 'विश्वमित्र तुम किस दुनिया में जी रहे हो? वो तुम्हारी तपस्या भंग करने पर तुली है और तुम ऐसे बर्ताव कर रहे हो जैसे दूध पीते बच्चे हो. तुम कब तक अकेलेपन का दंश भोगते रहोगे. आज लिव-इन रिलेशनशिप का ज़माना है. तुम्हारे मन के कोने में अगर कोई हसीना घर बना लेने को आमादा है तो उसकी अपेक्षा ख़ुद से और उस औरत से नाइंसाफ़ी होगी. अपनी जंजीरों को तोड़ो और थाम लो उसका हाथ. हो सकता है वो तुम्हारी ज़िंदगी के पतझड़ में बसंत बनकर दस्तक दे रही हो. ज़िंदगी में सुनहरे मौक़े बार-बार नहीं आते. इस ख़ूबसूरत ख़्वाब को हक़ीकत में बदल डालो.

मैंने फ़ोन मिलाया, 'कैसी हो मेनका?

'अच्छी हूं. सोचती हूं फ़ैसले लेने में इतना लंबा वक़्त उचित नहीं. आज किसके पास इंतज़ार का वक़्त है. तुम समझते क्यों नहीं. तुमसे मिलने को मैं कितनी बेकरार हूं.

'जी वो मैंने तुम्हारी तस्वीरें देखीं. सोशल मीडिया पर. तुम तो अप्सरा लगती हो... तुम्हारी ख़ूबसूरती ने मुझे दीवाना–सा बना डाला है...'

'मन करता है...'

'क्या करता है मन?'

'तुम मेरे क़रीब आ जाओ. तुम्हे बाहों में भर लूं. तुम्हारे होठों पर चुंबनों की झड़ी लगा दूं.'

ये मेरे उतावलेपन, व्यग्रता की इंतहा थी.'

'तो बाबू जी इंकार किसे है. आपणे तो मुझे तड़पा-तड़पा कर ही मार देणा है.' मेनका की दिलकश, सुरीली आवाज़ मुझे किसी अंधेरी सुरंग से आती हुई सुनाई दी.

मेनका सचमुच जादूगरनी थी. पर अपना संशय साझा करने के लिए मैंने उससे पूछा, 'वाट्सएप पर जो तस्वीरें तुमने भेजी हैं असल हैं या किसी और की. और फिर तुम

तो ख़ुद को पैंतीस का बता रही हो.'

'बाबूजी. ये कुछ साल पहले की हैं. मॉडलिंग का फ़ोटोशूट था. पर मुझे फ़िल्मों में काम दिलवाने के नाम पर मुझे बरगलाया गया. पर मैं बहरूपिया नहीं हूं.'

'मैं तो यूं ही ज़िक्र कर रहा था. सोशल मीडिया पर भरोसा करना मुश्किल है.'

'हाथ कंगन को आरसी क्या? पढ़े-लिखे को फारसी क्या. अपना पता भेजें. आ जाती हूं आपके घर. उतार लेना शीशे में.'

'नहीं घर पर ठीक नहीं रहेगा. मां भी ढेरों सवाल करेगी. आस-पड़ोस, दोस्त यार सब नज़रें तरेर लेंगे. समाज में रहना है तो उसके क़ायदे-क़ानूनों, मर्यादा को भी मानना पड़ता है.'

'बाबूजी. सचमुच बड़े डरपोक हो. चलो घर नहीं आती. मुंबई तो जा सकती हूं तुम्हारे साथ.'

'हां, उस पर विचार करता हूं और एक आध दिन में अपनी एयर टिकट के साथ तुम्हारी भी टिकट बुक करा देता हूं.'

'वाह ये हुई न बात. आपने तो मेरे दिल की मुराद पूरी कर दी. जो सपना मैं पूरा नहीं कर पायी, शायद वो मुंबई में पूरा हो. तुम अपनी मीटिंग अटैंड करना और मैं फ़िल्म कोऑर्डिनेटर्स के साथ मिलकर मॉडलिंग या फ़िल्मों में एन्ट्री लेने का प्रयास करती रहूंगी.

'अजीब औरत है. क्या मैं उसके लिए कोई लॉचिंग पैड हूं. यह तो सीधा-सीधा मेरा इस्तेमाल है. यानी मैं अपनी मीटिंग में खपता रहूं और शहजादी फ़िल्मों के ग्लैमर में ग़लत लोगों के साथ संपर्क बनाती रहे. और उसकी ख़ूबसूरती या टेलेंट क्लिक हो गया तो मैं दूध में मक्खी की तरह बाहर.

'चलो सोचता हूं. पर ये बताओ. कुल्लू के दूरदराज़ गांव से चंडीगढ़ तक कैसे आओगी?'

'हां. मैं बस में नहीं आ सकती धक्के खा-खाकर. फिर तुम्हारा बस पर मुझे लेने आना ठीक नहीं लगता. टैक्सी से आऊंगी. और हां, कुछ अच्छे सूट भी तो सिलवाने होंगे. भई बिल्डर की दोस्त का रुतवा तुम्हारी पर्सेनिलिटी से कम नहीं होना चाहिए. तुम्हारे साथ चलूं तो लोग रश्क करें. विश्वामित्र अब साधु या संत नहीं है. वो आधुनिक है. मेनका भी इसी सदी की है. हमारे सपने अलग हैं. ख्वाहिशों को हक़ीकत में बदलने के लिए कुछ तो क़ीमत चुकानी पड़ती है. एक लाख रुपया मेरे एकॉउंट में ट्रांसफ़र करवा दें. बैंक डीटेल्स आपके व्हाटसैप पर भेज दिये हैं. सीधे एयरपोर्ट पर पहुंचूंगी टैक्सी से.'

मुझे काटो तो ख़ून नहीं. हक्का-बक्का मैं यह सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए?'

गांव-बल्ह, डाकघर-मौहीं,
तहसील व जिला-हमीरपुर-१७७००१ (हि. प्र.)
मो. : ८२१९१५८२६९
ईमेल : rajanhmr@gmail.com

लघुकथा

चक्रव्यूह

आनंद बिल्थरे

क्या, आरोपी आपके साथ, दो वर्षों से बलात्कार कर रहा था?

जी हां!

फिर आपने उसी वक़्त पुलिस में रिपोर्ट दर्ज़ क्यों नहीं करवाई?

उसने कहा था कि वह, मेरे साथ शादी कर लेगा.

तो शादी की शर्त पर शारीरिक संबंध में, आपकी सहमति थी?

जी हां.

अब, क्या हुआ?

अब उसने शादी से इंकार कर दिया.

फिर, यह बलात्कार कहां हुआ? सिर्फ़ वादा खिलाफ़ी हुई.

लेकिन, वह मेरा, शोषण तो करता रहा न?

मैडम, यह शोषण नहीं है. राजीख़ुशी दो बालिगों की आपसी सहमति से बना, संबंध है. रही बात, वादा खिलाफ़ी की तो अलिखित अनुबंध के लिए क़ानून में दंड का कोई प्रावधान नहीं है. कई मामलों में देखा गया है कि महिलाएं सहमति से संबंध बनाती हैं, लेकिन किसी कारणवश, संबंध टूटने पर वे क़ानून का इस्तेमाल, निजी प्रतिशोध के लिए, बतौर हथियार करने लगती हैं. ख़ैर, फिर भी अगर आप चाहें तो, अदालत का दरवाज़ा, खटखटा सकती हैं. विवाह पूर्व, शारीरिक संबंध, अवैध है, यह जानते हुए भी, जाने क्यों आप जैसी पढ़ी—लिखी औरतें, इस चक्रव्यूह में फंस जाती हैं.

परामर्शदाता ने दो टूक जबाब दिया.

प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.)-४८१००१.
मो.: ८३५८९२१००५

मां की वजह से ज़िंदा हूं

अर्चना पैन्यूली

मूल रूप से उत्तराखंड की राजधानी देहरादून की रहने वाली, १९९७ से डेनमार्क की निवासी.

: प्रकाशन :

६ पुस्तकें प्रकाशित. डेनिश रचनाओं का हिंदी अनुवाद.

: उपन्यास :

'परिवर्तन', (२००३),
'वेयर डू आई बिलांग', (२०१४),
'पॉल की तीर्थयात्रा', (२०१६),
'कैराली मसाज पार्लर' (२०२०).

: कहानी संग्रह :

'हाईवे E-४७' (२०१७), ' कितनी मांएं हैं मेरी', (२०१९).

: सम्मान :

केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित (अप्रैल २०२०).

'कपड़े महंगे हैं, जला मत देना.'

'जलने की बात बिलकुल मत करो — कतई नहीं,' गहरी आवाज़ में, उंगली दिखाता हुआ वह जिस अंदाज़ में मुझसे बोला, मैं थोड़ा सकपका गयी.

वस्त्र चादर में बांध कर वह चलता बना.

दिल्ली के बसंत कुंज के एक आवासीय परिसर में हमने अपना नया घरौंदा बसाया ही था. बारह सालों बाद भारत लौट कर रहने आये थे. पति की रामबोल्ल बहुराष्ट्रीय कंपनी ने उन्हें दो वर्षों के लिए डेनमार्क से भारत भेजा था. इतने वर्षों बाद अपने देश में आकर फिर से रहना थोड़ा अपरिचित, अजीब और असहज-सा था. बच्चों को तो बिलकुल ही भिन्न परिवेश और सामाजिक मानदंडों से स्वयं को समायोजित करना पड़ रहा था. फिर भी यह अपना देश था, अपनी ख़ूबियों और कमियों के साथ.

वैसे हमें यहां अपने नये घर को बसाने में विदेश की अपेक्षाकृत समय बहुत कम लगा. सेवा प्रदाता कुशल कारीगरों, जिन्हें हम हायर कर सकते थे, ने सारा फ़र्नीचर, उपकरण लगा कर, फ़िक्स करके घंटों में ही हमारा घर हमारे लिए तैयार कर दिया. पड़ोसी मददगार थे. भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग इस आवासीय परिसर में रह रहे थे — गुप्ता, जोशी, शर्मा, नायर, राव, बहुगुणा, भारद्वाज, अय्यर, सेठी, सूरी, सिंह, बनर्जी, जौहरी... दरवाज़ों की नेमप्लेटों पर गड़ा हुआ था. कुछ परिवार ऐसे भी थे, जो विदेश में रह चुके थे. कोई अमेरिका दस वर्ष बिता कर आया था, कोई दुबई, कोई जापान, कोई यूरोप रह चुका था. सो हमें अपने जैसे लोग मिल गये थे. मगर मेरा ध्यान सोसाइटी में मंडराते — गार्ड, माली, धोबी और बाइयों की तरफ़ अधिक खिंच जाता, क्योंकि वे मुझे यूरोप में नहीं देखने को मिलते थे.

सोसाइटी में पांच ब्लॉक थे. हमने बी-ब्लॉक की छठी मंजिल में एक थ्री-बीएच का फ़्लैट कंपनी लीज़ पर लिया था. अच्छा, बड़ा-खुला और हवादार फ़्लैट, साथ में सर्वेंट रूम जो हम गेस्ट रूम के रूप में इस्तेमाल करते थे. परिसर में बाग़, जॉगिंग ट्रैक, जिम, बेडमिन्टन कोर्ट, स्वीमिंग पूल, ब्यूटी पार्लर, दर्ज़ी वग़ैरह सभी सुविधाएं मौज़ूद थीं.

हर ब्लॉक की इमारत में आठ मंज़िलें थी. सबसे नीचे की मंज़िल में लिफ़्ट के पास बेचारा गार्ड ख़ाकी वर्दी पहने सुबह से शाम तक एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठ कर पहरा देता. शिफ़्ट बदलती और रात आठ बजे दूसरा गार्ड आ जाता — रात आठ से सुबह आठ बजे तक वह ड्यूटी पर तैनात रहता — पूरे बारह घंटे. वेतन उनका मात्र पांच-छह हज़ार रुपये प्रति माह. ब्लॉक में रहने वाली कुछ औरतें सुबह-शाम गार्ड को चाय और बिस्कुट भिजवा देतीं. मैं भी उनकी टोली में शामिल हो गयी. अगर किसी ने नहीं भिजवाया तो वह एक प्याली चाय के लिए भी तरस जाता. मेरी अनुपस्थिति में गार्ड अमेज़न, फ़्लिपकार्ड से आया मेरा कूरियर, पार्सल वग़ैरह ले लेता. मैं उसे उसकी इस सेवा के लिए जब-तब पचास, सौ रुपये पकड़ा देती.

भारत में भीड़–भाड़, धूल, गर्मी, बहुत कुछ अव्यवस्थित-सा महसूस होता तो कई प्रकार की तसल्ली और आराम भी थे. घरेलू काम करने वाली बाई, कार की सफ़ाई करने वाला, दूध वाला, धोबी, सुरक्षा गार्ड, मोची, इलेक्ट्रिशियन और प्लंबर, आदि ने जीवन काफ़ी सरल बनाया हुआ था. विदेश में बारह साल रह कर और वहां अपने हाथों से सब काम करने के बाद भारत में मौज़द ये सुविधाएं अय्याशी लग रही थीं. ऐसा नहीं था कि वहां ऐसी सेवा देने वाले लोग मौज़ूद नहीं थे, मगर उनके रेट और मज़दूरी इतनी अधिक रहती है कि हम जैसों के लिए उन्हें हायर करना मुश्किल रहता है. कभी-कभी, जब मैं वहां बहुत थकी रहती थी तो घर साफ़ करने के लिए श्रीलंकन मैथुली को बुला लेती थी. सौ क्रोनर प्रति घंटा उसके रेट थे जोकि डेनमार्क में श्रम की मानक दर से कम ही थे. तीन घंटे वह मेरा घर साफ़ करने में लगाती थी. उसकी हर विज़िट के लिए मुझे तीन सौ क्रोनर, यानी तीन हज़ार रुपये उसे देने पड़ते थे. यह धनराशि मुझे उसे थमाते अखर जाती थी. इससे अच्छा तो ख़ुद ही घर साफ़ कर लूं. वहां समाज के विभिन्न वर्गों के बीच इतनी अधिक विषमता और विसंगति नहीं थी जितनी कि भारत में. मन बहुत कुछ सोचने को मज़बूर कर देता है.

बहरहाल हमारे अपार्टमेंट के ठीक सामने एक राव परिवार था, जहां चार पीढ़ियां एक साथ रह रही थीं. इतने सारे लोग, विभिन्न आयु वर्ग के कैसे एक साथ सामंजस्यपूर्ण रह लेते हैं, यह भी हमारे लिए अब एक कौतुक का विषय था. घर के मुखिया रामकुमार राव थे. उनके बूढ़े माता-पिता, उनके जवान बेटे-बहु और एक पोता. राव जी कोई कंपनी चलाते थे. बेटे-बहू मल्टीनेशनल कंपनियों में जॉब करते थे. और उनकी पत्नी घर की देखभाल, बूढ़े सास-ससुर की सेवा और सभी के खाने-पीने का इंतज़ाम. बेटे-बहू की लव मैरिज़ हुई थी. बहू मूलत: उत्तराखंड की गढ़वाली थी. इधर मैं भी गढ़वाली खानदान की. यह कनेक्शन हमें और क़रीब ले आया. उनका बेटा शाम को ऑफ़िस से आने के बाद और वीकेंड्स में मेरे बेटों के साथ बेडमिंटन, वालीबॉल खेलता. मेरे किशोर बेटों को उनके बहू-बेटे का साथ बहुत भाता.

राव जी का भरा-पूरा परिवार हमें बहुत सभ्रांत लगा. हमारे लिए एक बहुत बड़ा सहायक. जब हम यहां नये-नये पहुंचे थे और बसने की प्रक्रिया में थे तो उनका परिवार कभी हमें चाय पर अपने घर बुलाता तो कभी भोजन का निमंत्रण देता. कभी उनके घर दक्षिण भारतीय व्यंजन खाने को मिलते तो कभी पहाड़ी पकवान. मेरे बच्चे भी उनकी सहृदयता को अत्यधिक सराहते. एक पड़ोसी का यह भाव उनके लिए नया अनुभव था. किसी जमाने में रामकुमार राव के पिता आंध्रप्रदेश से दिल्ली आकर बस गये थे. कहते, 'जैसे तुम डेनमार्क में अप्रवासी हो, वैसे ही हम दिल्ली में अप्रवासी हैं.'

सो यहां मुझे हर प्रांत, हर वर्ग, हर तबके, हर रंग रूप के लोग नज़र आते. भारत कभी-कभी एक चिड़ियाघर जैसा लगता. सोसाइटी का धोबी रजत मुझे विशेष रूप से आकर्षित करता था. हरेक रविवार वह सुबह, पौ फटते ही हमारे बी-ब्लॉक के सभी घरों से चाबियां एकत्र करता और बेसमेंट में खड़ी हम सभी की गाड़ियां साफ़ करके चाबियां हमें वापस सौंप देता. उसकी फ़ीस एक कार साफ़ करने की मात्र दो सौ रुपये प्रतिमाह. सभी घरों से चाबियां इकट्ठा करना और वापस उसे सभी घरों में देना ही काफ़ी मशक्कत वाला काम था. मैं उससे बोली कि वह अपने रेट बढ़ा दे. विदेश में रह कर मुझे श्रम की क़ीमत पता चल चुकी थी.

कार साफ़ करने के अलावा रजत इस्तरी करने का भी काम करता. वह लोगों के घरों से कपड़े इकट्ठा कर अपनी टाल में जाता, और प्रेस करके लोगों के घर पहुंचा देता. उसकी पत्नी सोसाइटी में लोगों के घरों में बाई के काम में लगी थी. मेरे घर भी लगी थी. उनका दो साल का लड़का भी उनके साथ मंडराता. मुझे उन तीनों से बड़ी आत्मीयता हो गयी. वह सारा परिवार मुझे जीवन के लिए संघर्ष करते हुए मगर बहुत ख़ुश दिखता. कई बार तो रजत लिफ़्ट लेने के बजाए फुर्ती से आठ मंज़िल इमारत की सीढ़ियां यूं ही चढ़ जाता. वह एक साफ़ रंग का, लंबा और गठीले बदन का युवक था. इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि अगर वह अच्छी पैंट-शर्ट पहने तो किसी हीरो से कम नहीं लगेगा. हां, उसकी बीवी गहरे सांवले रंग की बेहद सामान्य रंग-रूप की महिला थी. अपने पति के अपेक्षाकृत बहुत कम सुंदर. बेटा अपने बाप पर गया था.

कई बार जब रजत हमारे घर कपड़े लेने आता तो उसके साथ उसका बेटा, अनसु भी होता. मैं अनसु को चॉकलेट देती. कभी बिस्कुट का एक डिब्बा थमा देती. 'आंटी को थैंक यू बोलो,' रजत अपने बेटे को सिखाया करता.

रजत को मालूम था कि मैं उसमें अतिरिक्त जिज्ञासा लेती हूं, उसकी परवाह करती हूं, उस नाचीज़ की इज़्ज़त करती हूं. आत्मसम्मान से उसकी आंखें उन्नत हो जाती. वह जब भी मेरे सामने पड़ता, थोड़ा इतरा जाता. मुझे उसका यह भाव और अंदाज लुभा जाता.

मेरे बार-बार के कहने पर रजत ने कार साफ़ करने के अपने रेट दो सौ रुपये से बढ़ा कर ढाई सौ रुपये प्रति माह कर दिये. इस मामूली सी वृद्धि पर सोसाइटी में इतना हंगामा मच गया. जो जितना अमीर वह उतना ही प्रतिवाद कर रहा था, जबकि मैंने देखा कि इस लग्ज़री कॉम्प्लेक्स में उच्च आय वर्ग के लोग रहते हैं, तमाम सुख-सुविधाओं से लैस. महंगी गाड़ियों में घूमते हैं. मॉल जाकर एक बार में हज़ारों रुपये उड़ा देते हैं. उस ग़रीब के जरा से रेट बढ़ाने पर हायतौबा मचा दी, जबकि उन ग़रीबों के बिना उनका काम नहीं चल सकता.

उस शाम जब रजत मेरे घर कपड़े देने आया तो उसका मुंह लटका हुआ था. बुझे स्वर में बोला, 'आर. डब्लू. ए. के सेकेट्री तक गयी है मेरी शिकायत. नहीं बढ़ने दिये लोगों ने मेरे रेट. धमकी मिली है कि अगर ज़्यादा बनूंगा तो इस सोसाइटी के अंदर मेरा और मेरी बीवी का आना बंद करवा दिया जाएगा. सबसे ज़्यादा एतराज आपके पड़ोसी ने किया.'

'राव जी ने?'

वह चुप रहा. आंसू उसकी आंखों में झिलमिलाने लगे. मेरा दिल पसीज गया.

राव जी के घर में तीन कारें थीं. एक बेटे की, एक बहू की और एक उनकी ख़ुद की. रजत के पचास रुपये प्रति माह रेट बढ़ाने की बात पर सबसे ज़्यादा हो-हल्ला उन्हीं ने ही मचाया. मगर उनके घर में कमाने वाले भी अधिक थे.

मेरा सोलह साल का बेटा पुलीन जो सब कुछ देख-सुन रहा था, मुझसे पूछने लगा, 'यहां मिनिमम वेज़ेस (न्यूनतम मज़दूरी) क्या है?

'यहां कोई न्यूनतम मज़दूरी नहीं है,' मैं बोली.

ख़ैर हम क्या कहते? व्यक्तिगत तौर पर हमारे राव जी से संबंध बहुत अच्छे थे. वे हमारे अच्छे पड़ोसी थे. मगर मुझे थोड़ी हैरत हुई कि राव जी जो इतने सहृदय, उदार प्रतीत होते हैं, इतने धनाढ्य हैं, किसी ग़रीब के जरा से पैसे बढ़ाने पर इतना विरोध क्यों कर रहे हैं. उन्हें क्या रजत और उसकी बीवी दिन-रात मज़दूरी करते, लोगों की जी-हज़ूरी करते नज़र नहीं आते? कुछ प्रश्नों के जवाब मुझे कभी नहीं मिले.

मैंने उनसे व्यक्तिगत तौर कुछ नहीं कहा मगर आगामी आर. डब्लू. ए. की ज़नरल मीटिंग में सभी के सम्मुख यह बात रख दी कि रजत जो हमारी कारें साफ़ करता है, उसे रुपये बहुत कम दिये जा रहे हैं.

राव जी ताव में आ गये, और मेरे खिलाफ़ उन्होंने अपना पूरा मोर्चा खोल लिया. 'यह रेट की बात है. यहां सिर्फ़ रजत ही नहीं, आठ लड़के काम करते हैं. अगर रजत के रेट बढ़े तो सभी के बढ़ाने पड़ेंगे.'

'तो सभी के बढ़ा दीजिए. आपको लगता नहीं कि उन्हें पैसे बहुत कम दिये जा रहे हैं. सुबह-सुबह पहली मंज़िल से लेकर आठवीं मंजिल तक चाबियां इकट्ठा करना, नीचे बेसमेंट में जाकर गंदी कारें साफ़ करना, चाबियां लौटने के लिए वापस घरों में जाना... यह सब ही बेहद मेहनत वाला काम है. उनके श्रम का सही मूल्यांकन न करना क्रूरता और अत्याचार है.'

'दो-चार लोगों ने मेरे साथ अपना स्वर मिला दिया तो फिर क्या था राव जी ग़ुस्से से आग बबूला हो गये. हाथ नचा-नचा कर मुझसे कहने लगे, 'आप लोग जहां से आये हैं, वहां वापस चले जायें. यूरोप की तुलना यहां न करो. यहां आप हमारे रेट ख़राब करने लगे हो.'

'बहरहाल रजत के रेट नहीं बढ़े, मगर मेरे और राव जी के संबंध ज़रूर बिगड़ गये. उनके पूरे परिवार ने मुझसे अपना मुंह मोड़ लिया. उनके बेटे ने मेरे बच्चों के साथ खेलना बंद कर दिया.

मुझे एक शादी में जाना था. मेरे मामा की लड़की की शादी हो रही थी. मामाजी का परिवार नोएडा में बसा था. बहुत साल हो गये थे मुझे परिवार की कोई शादी में भाग लिये. साड़ी पहने भी जमाना हो गया था. मैं बड़ी उत्कंठा से भरी थी. मैंने अलमारी से पारंपरिक परिधान बनारसी साड़ी निकाली. रजत को प्रेस के लिए पकड़ाते हुए बोल पड़ी, 'रेशमी साड़ी है. जला मत देना. बहुत महंगी है — पंद्रह हज़ार की.'

'जलने की बात मत किया करो,' उंगली नचाता हुआ, गहरी आवाज़ में वह उसी अंदाज़ में बोला. मेरा दिल कुहुक-सा गया. उससे पूछ बैठी कि उसको मेरी यह बात इतनी क्यों चुभ जाती है. उसने गर्दन झुका दी, एकदम ख़ामोश हो गया. मेरे दिये वस्त्र चादर में लपेटने लगा. थोड़ी देर में मोटे-मोटे आंसू उसकी आंखों से फ़र्श पर गिरने लगे.

'अरे रजत! तुम रो रहे हो! क्यों, क्या हुआ?'

सहसा वह बिफर गया, 'जलने की बात मत किया करो.'

'क्यों, इसमें ऐसा क्या है? तुम्हें बस चेताती हूं कि कपड़े महंगे हैं. प्रेस करते हुए कहीं जला मत देना.'

'बस, बस... इतना डर है तो मुझे मत दिया करो अपने कपड़े प्रेस करने के लिए.' और वह फूट-फूट कर रोने लगा.

'अरे!' मैं असमंजस में.

रसोई से उसके लिए एक गिलास पानी ले आयी. उसे थमाते हुए, उसका कंधा पकड़ा, 'आई ॲम सॉरी, रजत! मेरा मक़सद तुम्हारा दिल दुखाने का नहीं रहता.'

'वह जल कर मरी थी,' वह पानी घूंटते हुए बोला.

'कौन?'

'मेरी मां, और कौन?' वह बोला और हताशा से अपना सिर पकड़ लिया, उसकी सांस फूलने लगी थी.

यह मुझे रजत की पत्नी मानसा से पता चल चुका था कि उन्होंने बिहार के मरांची गांव से दिल्ली पलायन किया था — महानगर की अट्टालिकाओं में मज़दूरी करके अपनी रोज़ी-रोटी कमाने के लिए. उनके गांव में रोज़गार के कोई अवसर नहीं थे, अगर कोई काम मिलता भी तो मज़दूरी इतनी कम कि गुज़ारा नहीं हो पाता था. संयोग से मानसा की बहन और बहनोई दिल्ली में डिफ़ेन्स कॉलोनी में रह रहे एक व्यापारी के घर काम करते थे. बहनोई उनका ड्राइवर था और बहन उनकी घरेलू बाई.

व्यापारी ने उन्हें रहने के लिए अपना आउटहाउस दे रखा था. रजत और मानसा भी बिहार से आकर उनके साथ रहने लगे. तीन महीने वे बहन की पनाह में रहे फिर एक झुग्गी-बस्ती में अपना डेरा डाल दिया. दो हज़ार किराया वह प्रतिमाह भरते हैं, बिजली पानी का बिल अलग से.

रजत जब थोड़ा सामान्य हो गया तो मैंने उसे उकसाया, 'रजत, सब कुछ उगल दो. शायद तुम्हें शांति मिल जाये.'

वह एक पल चुप रहा, फिर धीरे-धीरे अपनी कहानी सुनाने लगा.

मेरे मां-पिताजी गांव से पटना आ गये थे मज़दूरी करने. पिताजी रिक्शा चलाते थे और मां घरों में काम करती थी. एक दिन मां स्टोव पर खाना पका रही थी, पिताजी और मां का उन दिनों बहुत झगड़ा चल रहा था. कभी-कभी झगड़ा इतना बढ़ जाता कि पड़ोसी आकर छुड़ाते. उस दिन मां खाना पकाते हुए ग़ुस्से में कुछ बड़बड़ा रही थी, पिताजी को कुछ खरी-खोटी सुना रही थी. कोई मनकानी सरनेम गूंज रहा था. पिताजी ग़ुस्से में दांत पीसते हुए कह रहे थे — 'तू मनकानी के घर काम करने नहीं जायेगी.'

'तो कमा इतना कि मुझे उनके घर न जाना पड़े.'

'सुबह से शाम सड़कों पर मारा-मारा फिरता तो हूं. जब नहीं मिलती सवारी तो क्या करूं? लोगों के पास कारें आ गयी हैं, बड़े-बड़े विक्रम, टेंपो चलने लगे हैं. लोग उनमें जाना पसंद करते हैं.'

'तभी से बोल रही हूं कि रिक्शा छोड़ कर कोई टेंपो चलाना शुरू कर दे,' मां ने सुनाया. 'तू ठहरा निरा निकम्मा! मैं क्या जानती नहीं. और रिक्शे वालों के साथ दिन भर फालतू में बतियाता रहता है. ताश-पत्ती खेलता है उनके साथ. बीड़ी फूंकता रहता है. तेरी बस की ना है कुछ करने

की.'

'हम भूखे मर जायेंगे मगर तू उस मनकानी के घर नहीं जायेगी जो तुझ पर गंदी नज़र रखे,' पिताजी चीख़े.

'मैं जाऊंगी, मैं जाऊंगी... तू कौन होवे मुझे रोकन वाला,' मां भुनभुनाई.

पिताजी ने ग़ुस्से में आकर पीछे से मां के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क दिया. स्टोव की आग ने मां को तुरंत पकड़ लिया. पिताजी पर भूत सवार हो गया था. वे पगला गये थे. उन्होंने अपने ऊपर भी तेल की बोतल उड़ेल दी. उन्हें भी आग की लपटों ने जकड़ लिया. मैं पास ही बैठा खेल रहा था. पिताजी मेरी तरफ़ बढ़ रहे थे कि मां ने उन्हें पकड़ लिया. कस कर चिल्लायी, 'रज्जू, भाग... घर से भाग... बाहर निकल...'

मैं आठ साल का... कभी आग में झुलसते अपने मां-पिताजी को देखता, कभी घर के दरवाज़े को. पिताजी मां की गिरफ़्त से अपने को छुड़ा कर मेरी तरफ़ लपक रहे थे. 'रज्जू भाग... बाहर जा...' मां लगातार चिल्ला रही थी, और मैं घर से बाहर भाग गया. बगल में रहने वाली आरती मौसी से हांफते हुए बोला, 'आग... आग... मां... पिताजी... जल रहे हैं.'

आरती मौसी ने हमारे घर से उठता धुंआ देखा. बस्ती में रहने वाले सभी को गुहार लगायी. सभी हमारे घर की तरफ़ भागे. मां और पिताजी बुरी तरह झुलस चुके थे, बस राख़ होना बाक़ी था. सभी पड़ोसियों ने मिल कर पानी उड़ेल-उड़ेल कर धधकती आग को बुझाया. मां और पिताजी को अस्पताल ले गये, मगर दोनों दम तोड़ चुके थे. कुछ दिनों तक मैं आरती मौसी के साथ रहा, फिर गांव से दादा-दादी आकर लेकर मुझे गांव ले गये. आरती मौसी और बस्ती के बाक़ी लोग मेरे मां-बाप की मौत पर तरह-तरह की बातें कर रहे थे.

'उस मनकानी की वजह से ही सब कुछ हुआ... उस सिंधी मनकानी की वजह से वे जल कर राख़ हुए,' उनकी अफवाहों में यह वाक्य बार-बार उछल रहा था. उनकी बातों से ही मुझे पता चला कि मां जब एक दिन सिंधी मनकानी के घर में काम कर रही थी, तो घर का मालिक घर में अकेला था. उसकी बीवी कहीं गयी हुई थी. मां पोंछा लगा रही थी, और वह पलंग में बैठा मां को ताक रहा था. फिर यकायक पूछने लगा, 'मेरी बीवी तुझे यहां काम करने के कितने पैसे देती है?'

'पांच सौ रुपये प्रति माह.'

'मैं तुझे हज़ार दूंगा — एक बार के...'

वह ललचाई नज़रों से मां को ऊपर से नीचे निहारते हुए बोला, 'तू ऐसा छोटा काम करने के लिए बहुत सुंदर है री. ग़जब की सुंदर है तू. अप्सरा !'

मां का हाथ पकड़ कर बोला, 'चल बिस्तर पर... मालामाल कर दूंगा...'

मां अट्ठाइस की और वह अट्ठावन का. उसकी बेटियां मां की उम्र की थीं, और मां का बाप उसकी उम्र का. 'मुझे रंडी नहीं बनना. छोड़ो मेरा हाथ, वरना मैं शोर मचाऊंगी,' मां ने उसे धमकी दी. मां चिल्लाने को हुई तो उसने डर कर मां का हाथ छोड़ दिया.

मां ने यह बात कइयों को बतायी, पिताजी को भी. पिताजी मां पर ही शक करने लगे. उनका आपस में झगड़ा होने लगा. मां वह घर नहीं छोड़ना चाहती थी, क्योंकि मां को उस घर की मालकिन से बहुत अच्छे पैसे मिलते थे. साथ में कपड़े-लत्ते और खाना-पीना अलग मिलता था. और उनकी शादीशुदा लड़की जो उनके पड़ोस में रहती थी, वहां भी मां काम करती थी. मां को लगा एक साथ दो घर छूट जायेंगे. मां घर की मालकिन से बोल चुकी थी, 'मैं आपके घर आपकी ग़ैरमौजूदगी में काम नहीं करूंगी. मुझे साहब से डर लगता है.'

मालकिन मां का इशारा कितना समझी, मालूम नहीं मगर उसने चुपचाप सहमति में गर्दन हिलायी.

गांव में मैं आठवीं तक स्कूल गया. सोलह साल का था तो एक सत्रह साल की लड़की से मेरी शादी हो गयी.

'तो मानसा उम्र में बड़ी है तुमसे?'

'एक साल.'

रजत बहुत जवान लगता था, वह दो साल के बच्चे का पिता नहीं लगता था.

पूछ बैठी, 'क्या उम्र है तुम्हारी?'

'तेईस साल.'

'तुम तो अभी बहुत जवान हो.'

'बीवी ही मुझे यहां दिल्ली लेकर आयी. वह बोली गांव में कुछ नहीं धरा है, दिल्ली चलते हैं. वहां उसकी बहन रहती है, वहां मज़दूरी करेंगे, और हम यहां आ गये.'

'गांव से दिल्ली आने तक का सफ़र कैसा था?' मैंने

पूछा.

'गांव से पटना आने में बस से ढाई घंटे लगे, फिर पटना से रेलगाड़ी में अठारह घंटे लगे दिल्ली पहुंचने में. ट्रेन के टिकट के पैसे भी नहीं थे, कर्जा लेकर आये.'

मुझे लगा कि उनकी बिहार से दिल्ली की यात्रा मेरी दिल्ली से डेनमार्क की यात्रा से कहीं अधिक संघर्षमय थी.

रजत की पत्नी भी हमारे घर शाम के बर्तन निपटाने के लिए आ गयी थी. फ़र्श पर चुपचाप बैठी अपने पति के मुख से निकलती कहानी सुन रही थी. पता नहीं कितनी बार वह सुन चुकी होगी ! उसकी भी आंखें भर आयी थीं. अपने पति को वह सहलाने लगी थी.

'तुम्हारी मां महान थी,' मैं बोली.

'सचमुच, मैं आज अपनी मां की वजह से ही ज़िंदा हूं.'

मैंने रजत और मानसा को सहलाया. 'यह देख कर बहुत ख़ुशी होती है कि तुम दोनों एक-दूसरे के प्रति बड़े वफ़ादार हो. मेहनती हो. अपने अनसु को प्यार से पालना. उसे ख़ूब पढ़ाना-लिखाना.'

सहसा मेरे दिमाग़ में कुछ कौंधा. कभी से सोच रही थी कि किसी ग़रीब बच्चे की शिक्षा को स्पोंसर करूं. कुछ संस्थाओं और अनाथालयों से मेरी बात भी चल रही थी. अरे मैं इधर-उधर क्यों जाऊं? अनसु है तो सामने. मैं उनसे बोली, 'मैं अनसु की पढ़ाई के ख़र्चे की ज़िम्मेदारी लेती हूं.'

दोनों ने मुझे हाथ जोड़ लिये. वे स्वाभिमानी थे, बोले, 'हमें बस आपका आशीर्वाद चाहिए. आपका मार्गदर्शन चाहिए. अपने अनसु को हम मज़दूरी करके पढ़ा लेंगे.'

Islevhusvej 72 B
2700 Bronshoj
Copenhagen, Denmark
Mobile: + 45 71334214.
E-mail: apainuly@gmail.com

कविता

ईश्वर से एक मुलाकात

एम. हिमानी जोशी

कल रात सपने में मुझे
ईश्वर दिखा
थका, बेबस, बूढ़ा, बीमार-सा.
वह मुझे पास बुला रहा था,
मैं दूर भाग रही थी,
नहीं तुम ईश्वर कतई नहीं हो सकते
ईश्वर बार्धक्य, जरा, मृत्यु से
परे होता है,
ऊर्जा, यौवन से
भरपूर होता है
तुम ईश्वर नहीं हो सकते?
वह बोला,
हां मैं वैसा ही था
जैसा तुमने सोचा था
अब थक गया हूं,
बहुत थक गया हूं
युगों-युगों से
अरबों-खरबों का पेट भरते-भरते
जन्म-मरण, पाप-पुण्य का
हिसाब रखते-रखते
चाहता हूं मैं अब
आराम करना
तमन्ना है मेरी
थपकी दे, मीठी लोरी सुना कोई
सुलाये मुझे,
मेरी लंबी उम्र की
दुआ करे,
बहन बन कोई
राखी बांधे
मां बन
माथे पे मेरे काला टीका लगाये
भाई बन
मेरा हाथ बटाये,
मित्र बन
हंसाये, गुदगुदाये,
प्रिय बन
प्रेम हिंडोले पे झुलाये,
ऊब गया हूं मैं.
मन्नत मांगती लंबी कतारों से
हर पल झोली फैलाये,
स्वार्थ की कातर पुकारों से
दम घुट रहा है मेरा
बमों मिसाइलों के धुएं से
बैमौत मरती चीत्कारों से
मैं बहरा हो रहा हूं
किसी अरण्य में
किसी अनछुई गुफा में
अब आराम करना चाहता हूं.

८२/४४ खुर्रमनगर, लखनऊ-२२६०२२. मो.८१७४८२४२१२०

कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिंदी में पीएच. डी.; दस कविता संग्रह, दो उपन्यास और दो कहानी संग्रह प्रकाशित. आकांक्षा संस्कृति सम्मान, कादंबिनी लघुकथा पुरस्कार, कौमी एकता अवार्ड, अंबेडकर उत्कृष्ट पत्रकारिता सम्मान, अग्रसर पत्रकारिता सम्मान, कबीर सम्मान, राजस्थान पत्रिका सृजन सम्मान, पंथी सम्मान आदि. पेंटिंग में रुचि. कुछ कला प्रदर्शनियां भी लगायीं. हिंदी फ़ीचर फ़िल्म चिपकू और बांग्ला फ़िल्में एक्सपोर्टः मिथ्ये किंतु सोत्ती, एका एबंग एका, महामंत्र, जशोदा, बांग्ला धारावाहिक प्रतिमा और शार्ट फ़िल्में ईश्वर तथा नोमोफ़ोबिया-एक यंत्र में अभिनय.

सोनकली और अशोकवृक्ष : एक दंतकथा

डॉ. अभिज्ञात

अंकुर फ़ुटबॉल खेलकर लौट रहा था. उसके सिर पर चोट लगी थी. ख़ून से उसकी शर्ट लथपथ थी. उसके दोस्त उसे घर पहुंचाने ले जा रहे थे. धूप तेज़ थी. थोड़ी देर के लिए वे एक पेड़ की घनी छाया के नीचे सुस्ता रहे थे. सहसा अंकुर के सिर पर कुछ गिरा. उसने ऊपर देखा एक विचित्र प्रकार का पक्षी था. उस पर अंकुर की आंखें जम गयीं. वैसा पक्षी उसने पहले कभी नहीं देखा था. उसे लगा कि पक्षी की हलचलों के कारण सिर पर कोई पत्ता, वृक्ष की कोई सींक या फल-फूल का कोई हिस्सा गिरा होगा. सिर को छूकर नहीं देखा क्योंकि पहले ही काफ़ी ख़ून गिर चुका था. जख़्म का दर्द अभी भी था. जल्द ही उसके दोस्त उसे घर पहुंचा गये. जहां से वह घर के पास ही रहने वाले हक़ीम जी के यहां गया. हक़ीम के यहां ही उसे पता चला कि उसके सिर पर जो कुछ गिरा था, वह पेड़ से गिरी हुई कोई शै नहीं बल्कि वह उस पक्षी की बीट थी. उस विचित्र सुंदर पक्षी ने कोई अनूठा फल खाया होगा. यह कहना था हक़ीम जी का. हक़ीम जी के अनुसार पक्षी की जो बीट उसके जख़्म पर गिरी थी, उससे संक्रमण का ख़तरा है. सो उन्होंने कुछ खाने की दवाएं और लगाने को मरहम दिये. और बताया कि किसी ऐसे पेड़ की ख़ुशबू आ रही थी, जो पूजा-पाठ से जुड़ी है.

अंकुर रात भर सोता रहा. सचमुच सुखद ख़ुशबू थी. थी नहीं है. जैसे वह उसके अंदर बस गयी हो सदा-सदा के लिए. जख़्म के बावजूद वह बहुत ही प्यारी नींद सोया. नींद में जैसे बहुत गहरे ज़मीन में घुसता चला गया. जैसे-जैसे वह गहराई में जाता गया और अधिक सुकून, अधिक ऊर्जा और राहत मिलती गयी. उसका क़द बढ़ता गया.

उसका जख़्म जल्द सूख गया. ज़ाहिर है कि उसे किसी प्रकार का

संक्रमण नहीं हुआ. सब हक़ीम जी की दवा कमाल था और वह उनकी काबलियत का और कायल हो गया था.

उसके बाद अंकुर का अजीबोग़रीब ख़्वाबों से रिश्ता नहीं टूटा. वह लगभग रोज़ ख़्वाब देखता था. उसके ख़्वाबों में प्रकृति के मनोहारी रूप दिखते. शायद उसका ही असर था कि वह वास्तविक दुनिया में भी पेड़-पौधों व वानस्पतिक संसार के क़रीब और क़रीब आने लगा था. धीरे-धीरे उसका फ़ुटबॉल से मन उचटने लगा था. दौड़-धूप की क्रियाएं अब उसे पसंद नहीं आती थीं. एक जगह पड़े रहना और सोना उसे अच्छा लगने लगा था. धीरे-धीरे वह एकांतप्रिय होता गया. पेड़-पौधों का अधिकाधिक सान्निध्य वह पसंद करता और कई बार उसे लगता कि वह उनके हाव-भाव पहचानने लगा है. उनके इशारे समझने लगा है.

ख़्वाबों का उस पर ऐसा गहरा असर हुआ कि किसी ने उससे जब पूछा — 'वह अपने जीवन में क्या बनना चाहता है?'

उसने सहसा जवाब दिया — 'मैं एक पेड़ बनना चाहता हूं.'

जबकि उसमें एक बेहतरीन खिलाड़ी बनने की तमाम ख़ूबियां थीं, जिनकी ओर वह मुंह मोड़कर बैठ गया है. अब प्रैक्टिस के लिए भी नहीं जाता. खेल के मैदान में गये कई रोज़ हो गये हैं.

सामने वाला मुतमइन हो गया कि अंकुर का दिमाग़ फिर गया है. वैसे भी उसके मुंह से एक अजीब–सी गंध निकल रही थी. शायद कोई नशा करने लगा है.

एक दिन अंकुर ने ख़्वाब में देखा कि उसके हाथ पेड़ की टहनी में बदलते जा रहे हैं. डर कर वह पसीने-पसीने हो गया. उसकी नींद टूट गयी. उसने करवट बदली फिर यह सोचकर खुश हुआ कि यह सपना था. और गहरी नींद सो गया.

सोकर देर से उठा. कमरे की खिड़की खुली थी और धूप कमरे में आ रही थी. मां किचन में थी. बर्तनों के बजने की आवाज़ से समझ में आ रहा था कि खाना पक रहा है. विधवा मां अपनी इकलौती संतान की नींद ख़राब नहीं कर सकती थी इसलिए उसे देर तक सोने दिया था. अंकुर से उसने बहुत सी उम्मीदें नहीं पाली थीं. उसके पिता की मौत के बाद मिल रही पेंशन से उसे पाला-पोसा था. सोचती थी कि बेटा कुछ न भी करेगा तो पेंशन से दोनों का गुज़ारा होता रहेगा. उसने बेटे पर पढ़ने-लिखने या कोई काम करने के लिए कभी दबाव नहीं डाला. जब मोहल्ले के लोग उससे कहते कि अंकुर बहुत अच्छा फ़ुटबॉल खेलता है, वह एक दिन देश का नाम रोशन करेगा तो उसके दिल में एक उम्मीद की किरण जगमगा उठती. हालांकि इधर बेटे की अकर्मण्यता से उस उम्मीद की लौ मंद पड़ने लगी थी. पढ़ने में वह पहले भी अच्छा नहीं था... देखें इस बार बारह की परीक्षा भी पास कर पायेगा या नहीं. इधर वह कुछ दिनों से स्कूल भी नहीं जा रहा है. मां ने उंगलियों पर जोड़ा. अंकुर उन्नीस का हो चला है. देर से स्कूल जाना शुरू किया था. इसलिए यूं भी पढ़ाई में पिछड़ गया है.

तभी अंकुर की आवाज़ मां के कानों में आयी — 'मां... चाय.'

मां सुबह ही चाय बना कर पी चुकी थी. बेटे के लिए भी बनायी थी. सुबह उसे एक-दो बार आवाज़ भी दी मगर जब वह बेसुध सोता रहा तो नहीं जगाया. चाय गर्म कर जब वह कप में लेकर कमरे में पहुंची तो पाया कि उसे चाय लाने का कहकर वह फिर वह सो रहा है. मां ने अब उसे उठाना ही उचित समझा — 'अंकुर उठ बेटा... ले चाय ले... देख दस बज गये हैं. क्या आज भी स्कूल नहीं जाना...?'

अंकुर उठकर बिस्तर पर बैठ गया. उनींदी आंखों से उसने चाय लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो मां के होठों से चीख़ निकल पड़ी. अंकुर भी भौंचक्का होकर देखने लगा... तो यह ख़्वाब नहीं था. उसके हाथ पेड़ की डाल में तब्दील होते नज़र आये.

अंकुर अपनी मां के साथ बस्ती से दूर लगभग सुनसान जगह पर झोपड़ी में रहने लगा था. उसने कई डॉक्टरों को दिखाया था. सारे इलाज़ व्यर्थ रहे. उसका पूरा शरीर धीरे-धीरे एक वृक्ष में बदलता जा रहा था. उसने पहले ही लोगों से मिलना-जुलना बंद कर दिया था ताकि वह तमाशा न बने. लोग जान जाते तो उस अजीब व्यक्ति को देखने के लिए ज़रूर आते, जो आदमी से पेड़ में बदल रहा था. उसने किसी प्रकार छिप-छिपाकर अपने-आपको केवल डॉक्टरों को ही दिखाया था. उसके सुपरिचित अट्ठासी साल के हक़ीम जी ने जब उसे देखा तो सोच में पड़ गये. दिन-रात वे अध्ययन मनन करते रहे. सोचते रहे कि किस प्रकार उसे ठीक कर दें, पर कोई हल नहीं निकला. अलबत्ता उन्होंने रोग के कारण के संबंध में दावा किया कि एक पक्षी ने किसी पेड़ का फल खाया था और उस पक्षी ने अंकुर के

फटे सिर वाले जख़्म पर बीट कर दी थी. बीट में वृक्ष का बीज था. वह बीज अंकुर के ज़ख़्म के जरिये उसके शरीर या ख़ून में प्रवेश कर गया. उसके कारण अंकुर के शरीर में यह परिवर्तन आया है और वह वृक्ष में बदल रहा है. किंतु इस रोग का निदान खोज पाने से पहले ही हक़ीम जी इस दुनिया से कूच कर गये.

जैसे-जैसे अंकुर का शरीर पेड़ में बदलता गया, उसकी मां तेज़ी से बूढ़ी और अस्वस्थ होती चली गयी. एक दिन अंकुर पेड़ में तब्दील हो गया. लोगों को कुछ दिन बाद यह ख़बर मिली कि एक बुढ़िया का शव एक पेड़ के पास से बरामद हुआ. वह पेड़ से लिपटी हुई थी. कुछ दिन पहले ही उसकी मौत हो चुकी थी.

सोने जैसी काया वाली थी सोनकली.

सोनकली की शादी के लिए वर देखने का सिलसिला शुरू हुआ. उसके पिता हरिदास को एक वर पसंद आ गया. लड़का पढ़ा-लिखा था. एक सरकारी प्रतिष्ठान में बाक़ायदा चपरासी की पक्की नौकरी थी. हरिदास को और क्या चाहिए था. उन्होंने एक कपड़े की दुकान में एक नौकर के तौर पर काम करके अपनी ज़िंदगी काटी थी. ग्राहकों को कपड़े दिखाने वाले हरिदास को खुद कभी अच्छे कपड़े नसीब नहीं हुए थे. बेटी जब दस पास कर गयी तो उसके लिए वर खोजने निकले थे.

पहला ही घर ऐसा देखा कि बांछें खिल गयीं. लड़के के मां-बाप को दो जोड़ी कपड़े में लड़की चाहिए थी, बशर्ते ख़ूबसूरत हो. हरिदास को सुंदर लड़की से विवाह करने का यह पुरस्कार मिला था कि बेटी सोनकली ने मां का रूपरंग ही पाया. हरिदास यूं तो कभी-कभार पूजा-पाठ कर लिया करते थे लेकिन न तो अंधविश्वासी थे और ना ही कर्मकांडी. न ही इसके लिए उनके पास समय था और ना पैसा. बेटी अपनी ननिहाल में पैदा हुई थी इसलिए उसकी कुंडली बनवाने का ख़्याल तक नहीं आया था. ना ही जन्मतिथि याद थी. जन्म का समय और मुहूरत आदि तो दूर की बात थी.

लेकिन अब यह ज़रूरी हो उठा था. लड़के वालों ने जन्म कुंडली मांगी थी. वर से यदि कुंडली मिल गयी तो कोई बाधा नहीं थी. उन्होंने लड़की वालों को साफ़-साफ़ बता दिया कि उन्हें पता नहीं है. वे जल्द कुंडली बनाकर उनके दर्शन करेंगे.

जो हरिदास कभी अपनी बेटी के रूप-रंग, व्यवहार कुशलता, गृह कार्यों में निपुणता पर वारी-वारी जाते थे वही अब उनके लिए बोझ लगने लगी. वे उसकी शक्ल तक नहीं देखना चाहते थे. उनके मुंह से बात-बात पर उसके लिए ताने निकलते. काम पर जाते समय वह दिख जाती तो बुरा–सा मुंह बनाते और सोचते पता नहीं अब क्या अनिष्ट घटने वाला है. दरअसल लड़के वालों से बातचीत के बाद दूसरे दिन ही उन्होंने पंडित जी को घर पर बुलाया. पत्नी से बेटी के जन्म की तिथि व समय पूछा और पंडित जी से उसकी जन्मकुंडली बनाने को कहा. छूटते ही पंडितजी ने कहा — 'कुंडली क्या बनवाना है. रहने दीजिए. बेटी मांगलिक है. आपसे किसी दक्षिणा आदि की तो उम्मीद नहीं. क्यों अपना समय बर्बाद करें?'

सुनते ही हरिदास को काठ मार गया. वे काम पर नहीं गये. दूसरे दिन तड़के ही ससुराल गये. वहां फिर से बेटी की जन्मतिथि और जन्म का समय बार-बार पूछा. पहले वाला जवाब सुनकर रही-सही आस जाती रही. बुझे चेहरे और भारी क़दमों से घर लौट आये. रात में खाते समय हलक से निवाला नीचे नहीं उतर रहा था.

एक ही सप्ताह में हरिदास की उम्र दस साल बढ़ गयी. वे सिर गाड़कर राह में चले जा रहे थे कि पंडित जी से टकराते-टकराते बचे. उन्होंने मरी-मरी सी आवाज़ में पंडित जी को प्रणाम किया. और आगे बढ़ निकले ही थे कि पंडित जी ने टोक दिया — 'रुको हरिदास. सुनो. यूं जी छोटा न करो. आदमी चाहे तो हर समस्या का निदान हो सकता है. तुम्हारी बेटी की शादी होगी और वहीं होगी.'

—'क्या और कैसे..?' हरिदास बेसब्र होने लगा.

पंडित जी ने धीरे से कहा — 'बस कुछ राज़ राज़ रखने होंगे. और मुझ पर भरोसा करना होगा. मैं जैसा जैसा कहता हूं करते जाओ. सब मंगल होगा. बेटी की कुंडली में मांगलिक दोष ज़रूर है लेकिन सुख-समृद्धि और संतान भी लिखी है. मैंने घर जाकर उसकी कुंडली अपने मन से बनायी है. बहुत अच्छी है. कुल मिलाकर यह समझ लो कि हम लड़के वालों को मांगलिक दोष की कानोकान ख़बर नहीं होने देंगे. और अपने पास पड़ोस में भी किसी को मत बताना. वैदिक ज्योतिष में मांगलिक दोष सबसे ख़तरनाक दोष है. यह दोष मंगल ग्रह की उग्र प्रकृति के कारण होता है. यह दोष तब लगता है जब व्यक्ति की जन्म कुंडली में मंगल १, २, ४, ७, ८ या १२वें घर में मौजूद होता है.

लड़कियों के लिए कुंभ विवाह, विष्णु विवाह और अश्वत्थ विवाह मंगल दोष के बचने के सबसे अधिक प्रचलित उपाय हैं. जिस कन्या की कुंडली में मंगल दोष होता है, वह अगर विवाह से पूर्व गुप्त रूप से घट अथवा पीपल के वृक्ष से विवाह कर ले तो मंगल दोष से रहित वर से शादी करे तो दोष नहीं लगता. गीता में इसका उल्लेख है — 'वृक्षानाम् साक्षात अश्वत्थोहम्' अर्थात वृक्षों में मैं पीपल का पेड़ हूं. अश्वत्थ विवाह अर्थात पीपल या बरगद के वृक्ष से विवाह कराकर, विवाह के पश्चात उस वृक्ष को कटवा देना चाहिए. मेरे ख़याल से हम बेटी का अश्वत्थ विवाह करा दें. यह विधि कम ख़र्च में हो जायेगी. सौभाग्य से आपके परिसर में पीपल का पेड़ भी है. आपकी बिटिया का मांगलिक दोष कट जायेगा. वह राजी ख़ुशी अपनी ज़िंदगी जियेगी. मैंने देखा है उसका सुहाग वृद्धावस्था तक उसके साथ रहेगा. यह उसकी कुंडली कहती है. तुम कल मेरे घर आना. मैं सब बताऊंगा और सारे प्रबंध कर दूंगा. बेटी की शादी में लड़के वालों की तो कोई डिमांड है नहीं. तो तुम इस पंडित का तो ध्यान रखने की हालत में हो ही. अब चलता हूं.'

हरिदास मन ही मन अपने को समझाता रहा कि सब प्रभु के हाथ छोड़ देने में ही सबकी भलाई है. अब बेटी मांगलिक है, तो उसमें उसका क्या कसूर. पिता होने के नाते उन्हें झूठ-सच बोलकर उसकी ज़िंदगी संवारनी पड़े तो वे बोलेंगे.

हताश हो चुके हरिदास के जीवन में पंडित जी भगवान बन कर आये थे. उन्होंने अच्छी साइत की ऐसी जन्म कुंडली बनायी थी कि गन्ना-मन्ना मिल गया और वर-वधू के ज़्यादातर गुण मिल गये. सगाई हो गयी और विवाह का लग्न भी निकल गया. और जैसा कि तय था बेटी की शादी अपने ही ज़मीन पर उगे पेड़ से रात में चुपचाप कर दी गयी. तय यह हुआ कि दूसरे दिन पेड़ काट दिया जायेगा. लेकिन विधि के विधान में ऐसी मुश्किलें लिखी थीं कि हरिदास फिर बेटी से कुपित हो उठे.

शादी के बाद सोनकली देर रात तक पेड़ के नीचे बैठी रही. फूट-फूट कर रोती रही. यह सोचकर कि उसका सुहाग एक पेड़ है. और वह काट दिया जायेगा. मनुष्य कितना स्वार्थी है. अब जब उसकी ज़िंदगी की डोर एक पेड़ से बांध दी गयी है तो वह उसका निर्वाह करेगी. वह अपने जीते जी अपने सुहाग को उजड़ने नहीं देगी. उसके जितने आंसू गिरते, उसकी दृढ़ता और बढ़ती जाती. उसका पेड़ के प्रति प्रेम गहरा होता जाता. पेड़ को स्पर्श कर उसे असीम सुख की अनुभूति हुई. ऐसा अनुभव उसे कभी नहीं हुआ था. किसी अत्यंत प्रिय के सामीप्य की सुखानुभूति. आख़िर पेड़ है तो क्या हुआ, है तो उसका पति ही.

हरिदास ने कुछ लोगों को पहले ही कह दिया गया था कि हमारे घर के परिसर में एक पेड़ है. उससे गिरती डालों से हमेशा लोगों को ख़तरा बना रहता है. उसके पत्ते इतने झड़ते हैं कि बार-बार झाड़ू मारनी पड़ती है. पेड़ पर कौए अंडे देते हैं, जो बच्चों पर झपट्टा मारते हैं. कुल मिलकर यह कि वे लोग खुद अपने संसाधनों से पेड़ काट ले जायें और उसके ऐवज में तीन हज़ार रुपये भी दे दें. सौदा तय हो चुका था और हरिदास ने पूरी रक़म डेढ़ हज़ार यह कहकर पेशगी ली थी कि बेटी की शादी है, पैसों की बहुत ज़रूरत है. और पेड़ शादी के पहले कट जायेगा तो वहां शामियाना आदि तानने में दिक़्क़त न होगी.

इधर पेड़ काटने के लिए चार लोग आरी, कुल्हाड़ी व रस्सी के साथ मेटाडोर से उतरे ही थे कि दनदनाती हुई पुलिस जीप आकर दरवाज़े पर रुकी. पुलिस वालों ने पूछा — 'किसकी इज़ाजत से यह पुराना पेड़ काटा जा रहा है. पुराने पेड़ को काटने की इज़ाजत नहीं है. यूं भी यह पीपल का पेड़ है. लोग इसकी पूजा करते हैं. आपको पाप लगेगा इसे काटने से.'

पेड़ काटने आये लोग हरिदास से लड़ पड़े. उससे न सिर्फ़ अपने डेढ़ हज़ार रुपये वापस ले गये, बल्कि मेटाडोर आदि के किराये के लिए और मांगने लगे. किसी प्रकार हाथ-पैर जोड़कर पांच सौ रुपये और देकर हरिदास ने उन्हें चलता किया. पुलिस वालों ने खरी-खोटी सुनायी, सो अलग. उन्हें पता ही नहीं चला कि आख़िर पेड़ काटने की चुगली किसने पुलिस से की. बेटी इस संबंध में पुलिस को फ़ोन कर सकती है, यह तो उन्होंने सपने तक में नहीं सोचा था. और जैसा कि पुलिसवालों ने वादा किया था उन्होंने सोनकली का ज़िक्र तक हरिदास से नहीं किया.

हरिदास को काटो तो ख़ून नहीं. पांसा उल्टा पड़ता देख पंडित जी हरिदास को डांटने लगे — 'मैंने पहले ही कहा था घर के पास वाले पेड़ के चक्कर में मत पड़ो. तुम्हारी ससुराल में पेड़ कम हैं क्या, मगर तुमने एक न सुनी अब... इस अनिष्ट से बचने के लिए उपाय करता हूं मगर ख़र्च और बढ़ जायेगा.. और समय भी कम बचा है. तीसरे

दिन ही तो लगन है.'

इतने में सोनकली फट पड़ी — 'मुझे नहीं करनी किसी और से शादी. मेरी शादी जिससे होनी थी, हो चुकी. मेरी तक़दीर में पेड़ लिखा था तो पेड़ ही सही. क्या जिन लड़कियों की शादी नहीं होती, वे नहीं जीतीं. इतनी ही पहाड़ हो गयी हूं तो किसी कुएं में धकेल दीजिए. अगर आपसे नहीं होता तो मैं ख़ुद ज़हर खाकर जान दे दूंगी मगर अब और शादी नहीं करूंगी. मैंने आज्ञाकारी होने का अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया है. आपने एक पेड़ से मेरी शादी की मैंने उफ़ तक नहीं की. अब और मेरा इम्तिहान मत लीजिए. पंडित जी आपके हाथ जोड़ती हूं किसी विवाहिता का श्राप मत लीजिए. और हां आप दोनों सुन लीजिए यह पेड़ कटने से मैंने ही बचाया है. मैंने पत्नी-धर्म का निर्वाह किया है. और इसमें मुझे कोई शर्म नहीं.'

हरिदास — 'अरे कलमुंही अब मैं लड़के वालों से क्या कहूंगा..?'

सोनकली — 'पापा, आपने अपने दिल से मेरा भला चाहा. मैं आपको दोष नहीं देती. दोष मेरी तक़दीर का है. आप यह नहीं कह सकते कि आपकी बेटी मांगलिक है क्योंकि आप पहले ही झूठ बोल चुके हैं. आप यह तो कह ही सकते हैं कि बेटी अपने मन की हो गयी है... उसने किसी और से शादी करने की ज़िद पकड़ रखी है... और यह पहले वाले झूठ से कम झूठ है. और इस नये झूठ से आपके पिछला झूठ बोलने का पाप कट जायेगा. और हां आइंदा सभी से यही कहिएगा. यहां के लोगों से भी, क्योंकि लोग मेरी तक़दीर को आकर कोसेंगे तो आपको बुरा लगेगा और मुझे भी. मैं अपने पति के ख़िलाफ़ किसी से एक भी शब्द नहीं सुनना चाहती.

सोनकली अक्सर पेड़ के पास बैठी रहती. वहीं पढ़ती-लिखती. उसने आगे पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खड़े होने का निश्चय कर लिया था. वह घंटों पेड़ से अपने मन की बातें करती. अपने पति की हालत पर अक्सर रोती. रोने से उसका मन एकदम हल्का हो उठता. उसे लगता उसका पति उसके समीप है. वह उसे दुलार रहा है. कई बार लगता कि पेड़ उससे कुछ कह रहा है.

उसकी सहेलियों ने कई बार उसे पेड़ के पास बैठे देखा. रोते हुए भी देखा. कारण पूछा.

सोनकली क्या कहती. फिर भी कहा — 'यह पेड़ अद्भुत है. इसके पास बैठ कर रोने से मन हल्का होता है. यहां रोने और मन की बात कहने से सुकून मिलता है. यह शांति वृक्ष है. यह शोकहर्ता है.'

सहेलियों ने उसकी बात पर यक़ीन कर लिया. उन्हें कोई दुःख होता तो वे पेड़ के पास जातीं. वहां खुलकर रोतीं. सचमुच दुःख का अहसास कम हो जाता. मन की बात कहने से पीड़ा कम हो जाती. धीरे-धीरे बात फैलने लगी. उसने दंतकथा का रूप लिया. वह वृक्ष अशोक वृक्ष बन गया.

सोनकली परेशान रहने लगी. दिन में पेड़ के नीचे अक्सर कोई न कोई रोता मिल जाता. कोई न कोई ऐसा होता, जो अपने दुखड़े वहां रोता रहता. सोनकली को अब रातों को ही एकांत मिलता. अपने पति से अपने दिल की बात कहने का. मगर एक सुख भी मिला. उसके पेड़ को लोग इज़्ज़त की निग़ाह से देखने लगे थे. कई लोग पूजा करने लगे थे.

सोनकली का पति के प्रति प्रेम प्रगाढ़ होने लगा था. देर रात तक वह वहीं रहती. मन की बातें करती. दिन भर स्कूल में क्या हुआ बताती. बुरा करने वालों की चुगली करती. मदद करने वालों की तारीफ़ के पुल बांधती. उलझन की हालत में पति से उपाय पूछती. और कई बार उसे लगता कि उसे जवाब मिला है. कहीं से कोई धीमी आवाज़ आयी है.

पहले उसे लगा उसके मन का वहम है. फिर पेड़ से कान लगाकर पूछा तो चौंक गयी. पेड़ के अंदर से उसकी बातों का जवाब मिलने लगा. उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा. लेकिन पेड़ ने कहा था किसी को न बताना नहीं तो मेरा अनिष्ट हो जायेगा.

वह अपने पति की बात काट नहीं सकती थी. उसने बात गोपन रखी.

सोनकली को एक दिन पता चला पेड़ दरअसल पेड़ नहीं है. वह कभी मनुष्य था. और उसका नाम अंकुर है. जो एक बीमारी की वज़ह से पेड़ में तब्दील हो गया क्योंकि उसका इलाज़ खोजा ही नहीं जा सका. उसे अब पता चला है कि उसका इलाज़ स्त्री के आंसुओं से हो सकता है. जब पहली बार सोनकली पेड़ के पास रोई, उसके पेड़ से मनुष्य बनने की प्रक्रिया शुरू हो गयी. अंकुर कई साल लगातार पेड़ रहा था. बार-बार सोनकली से वहां आंसू गिरे और वह

लघुकथा

जुलूस

✍ युगेश शर्मा

रायपुर का रेल्वे स्टेशन. कई वर्ष हुए मैं एक दिन वहां एक वी. आई. पी. की प्रतीक्षा कर रहा था. समय काटने के लिए तीसरे दर्ज़े के मुसाफ़िरखाने की ओर एकटक देखने लगा. काफ़ी देर देखता ही रहा. सहसा मेरी दृष्टि मुसाफ़िरखाने की बायीं तरफ़ रास्ते के किनारे जमा भीड़ पर जा टिकी. यहां ढेर सारी युवतियां खड़ी थीं और उम्र के हर पड़ाव के पुरुष वहां मक्खियों की नाई भिनभिना रहे थे. ज़्यादातर संख्या युवकों और अधेड़ों की थी.

यह सब देखकर मैं अपने कौतुहल को रोक न सका. वी. आई. पी. के आने में अभी पंद्रह-बीस मिनट की देर थी. सो, मैं कार से उतर कर उस चहल-पहल वाले स्थल पर जा पहुंचा. वास्तव में वहां अंकशायिनी युवतियों के सौदे हो रहे थे. दर भी क्या थे. डेढ़-दो रुपये से शुरू होकर साढ़े तीन-चार पर समाप्त हो रहे थे. पहले तो युवतियां ना-नू करती थीं, फिर शिकारी के पीछे चल देती थी. एक अजीब बात और देखी मैंने यहां, दो-तीन शिकारी साझेदारी में भी शिकार को ले जा रहे थे. दोनों तरफ़ बेबसी की इंतहा थी.

मैं यहां अधिक देर खड़ा न रह सका. वहां से चलकर रेलवे स्टेशन के सामने पहुंचा. तब वहां चौराहे पर प्रस्थापित प्रतिमा के सामने से एक जुलूस निकल रहा था. हर जात और पात के लोग थे जुलूस में. नेतानुमा प्राणियों की संख्या भी कम नहीं थी. जुलूस में ख़ूब जोश था. प्रत्येक के हाथ में नारे लिखी तख्तियां थीं. नारे थे — विमल मित्र के 'सुरसतिया' उपन्यास को जब्त करो... लेखक विमल मित्र को गिरफ़्तार करो. छत्तीसगढ़ की नारियों की इज़्ज़त अमर रहे... हमसे जो टकरायेगा, मिट्टी में मिल जाएगा.'

अपने शिकारी के साथ खड़ी युवतियां इस जुलूस को चौराहे से गुज़रते हुए निर्लिप्त भाव से देख रही थीं. वे चाह रही थीं — यह जुलूस जल्दी से रास्ता खाली करे, जिससे कि ये हाथ लगे ग्राहक से फ़ुर्सत पाकर फिर रेलवे स्टेशन पर आकर खड़ी हो सकें. पेट के खातिर, अंधे बाप के खातिर, दूधमुंहे बच्चे के खातिर.

'व्यंकटेश कीर्ति, ११ सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.
मो. : ९४०७२७८९६५.

स्वस्थ होने लगा. फिर तो तमाम औरतों ने वहां रो-रोकर उसमें जान फूंक दी है. क्या वह इस पर यक़ीन करती है.

सोनकली के हां कहने पर उत्साहित अंकुर ने बताया — 'वह कल पेड़ से बाहर आ जायेगा. जैसे-जैसे वह स्वस्थ होता गया है, पेड़ का बाहरी हिस्सा जर्जर होता व सूखता चला गया है. पेड़ का एक हिस्सा तोड़कर कल वह बाहर आ जायेगा लेकिन मनुष्य से पेड़ और पेड़ से मनुष्य बनने की कथा किसी को नहीं बतायी जायेगी. यह स्वाभाविक ज़िंदगी जीने के लिए ज़रूरी है.'

अगली सुबह सोनकली ने हरिदास से कहा — मैं एक लड़के को पसंद करती हूं और उससे विवाह करना चाहती हूं. उसे देर शाम को सबसे मिलवाने के लिए घर बुलाया है.'

हरिदास की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा.

लेकिन देर शाम ठीक-ठीक क्या हुआ किसी को नहीं पता चला. लोगों के कहना है कि एक ज़ोर की आवाज़ आयी जैसे बिजली गिरी हो. सोनकली के घर के अहाते में खड़ा पीपल का पेड़ गिर पड़ा और घर आग में जलकर स्वाहा हो गया. साथ ही घर के लोग भी. सबकी लाशें तक खाक़ हो गयीं.

यह भी अफ़वाह उड़ी की पीपड़ के पेड़ से कोई निकला था, जिसकी बाहें पकड़ कर सोनकली तेज़ी से भागती दिखी थी. उनके पीछे सोनकली परिवार के लोग भी थे. वहीं कुछ लोगों का यह भी कहना था कि सोनकली के पिता किसी भ्रष्टाचार में फंसे थे और बचने के लिए पेड़ काट दिया, अपने घर में आग लगा दी और पूरे परिवार के साथ भाग खड़े हुए ताकि उन्हें मरा समझ कर मुआमला रफ़ा-दफ़ा हो जाये. जितने मुंह उतनी बातें. सोनकली और अशोक वृक्ष की कथा दंतकथा बनकर रह गयी.

सन्मार्ग, १६० बी, चित्तरंजन एवेन्यू,
कोलकाता-७००००७,
मो. :९८३०२७७६५६
ईमेल-abhigyat@gmail.com

जन्म : गाजियाबाद (उ. प्र.).
वर्तमान में चिकित्सक के रूप में झांसी में कार्यरत.
'वीणा', 'कथाक्रम', 'दोआबा', 'ककसाड','अहा ज़िंदगी', 'पाखी', 'लमही', 'कला वसुधा', 'परिकथा' आदि पत्रिकाओं में कहानियों/कविताओं का प्रकाशन. स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं तथा डिज़िटल मीडिया में रचनाओं का नियमित प्रकाशन.
प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशधीन.
कविताएं, कहानियां और सामाजिक विषयों पर ब्लॉग आदि का लेखन.
आकाशवाणी के छतरपुर (मध्यप्रदेश) केंद्र से रचनाओं का नियमित पाठ

बोल मेरी मछली कितना पानी!

डॉ. निधि अग्रवाल

इस क्षेत्र की त्रासदी यही थी कि उमसता ख़ूब था लेकिन बरसता नहीं. क्षेत्र का नाम अपनी कल्पना और सुगमता के अनुसार कुछ भी रख लीजिए. शतरंज में राजा हो या प्यादा उनके न नाम होते हैं न महत्व. केवल दांव चले जाते हैं, वे ही बाजी का फ़ैसला करते हैं. चाल सही बैठ जाये तो प्यादा भी राजा को मात दे सकता है. इसी प्रकार राजनीति में भी क्षेत्र के नाम और पात्र नहीं, शक्ति और रुतबे का महत्व है. शारीरिक शक्ति के बल पर भावेश सप्ताहांत पर लगनेवाले बाज़ार का हफ़्ता वसूलते पहले 'भावेश दादा' और फिर देश की सबसे बड़ी पार्टी का टिकट पाकर, विधायक भावेश दादा पाटिल बन गया था. पिछले सालों में केंद्र और प्रदेश की सत्ता भले ही बदलती रही हो पर उसका वर्चस्व अक्षुण्ण बना रहा था.

'भावेश पाटिल का क्या करना है?' पार्टी ज़िला अध्यक्ष अभिजीत शिंदे ने माचिस की तिल्ली से दांत कुरेदते हुए कहा.

'क्या करना है? जो करना है वही करेगा हम लोगों की क्या बिसात है. अंगद की तरह पांव जमाए है. हारता ही नहीं', दयानंद ने बेचारगी से कहा.

'कुछ ध्रुवीकरण कराओ. कुछ न मिले तो धर्म उछाल दो. धर्म जनता का भला करे या न करे, नेताओं के ख़ूब काम आया है', शिंदे ने तुरुप का इक्का इस्तेमाल करने की सलाह दी.

'बंदूक की गोली पर नाम, किसी भी धर्म का लिखा हो लेकिन चलाने वाले सभी हाथ भावेश के ही इशारे पर चलते हैं शिंदे बाबू. कोई लाभ न होगा.'

'सीट खाली छोड़ दें क्या? कोई बिजूका तो चाहिए ही न! किसको टिकट दें? तुम्हारा ही नाम दे दूं क्या?' शिंदे ने चुहल की.

'डर के मारे सगे मां-बाप भी वोट नहीं देंगे. गांव भर में बदनामी होगी.

जमानत अलग ज़ब्त होगी. मुझसे दुश्मनी है क्या आपकी?' दयानंद ने आपत्ति जाहिर की.

'तो क्या करें! अब कोई दुश्मन ढूंढ़ उसे टिकट दें? बड़ी समस्या है.'

☐

युद्ध जीतने में या तो वह सफल होता है जिसके पास जीत का हौसला हो या वह, जिसे हारने का भय न हो. तीन छोटे कस्बों के परिसीमन से, दो लाख जनसंख्या वाले इस क्षेत्र की सुबह में तब आश्चर्य घुल गया जब भावेश दादा की पार्टी के ही एक आम कार्यकर्ता गजानन को, विपक्षी पार्टी ने उसके विपरीत मैदान में विधायक प्रत्याशी बनाकर, खड़ा कर दिया.

गजानन की जन मानस में अच्छी छवि थी. तहसील, कचहरी का काम हो या किसी की बेटी का ब्याह, गणपति के पंडाल की व्यवस्था करनी हो या किसी के अंतिम संस्कार की, वह सदा आगे रहता. भावेश से अलग करने के लिए शिंदे ने कौन–सा वशीकरण मंत्र चलाया, यह कोई नहीं जान पाया.

भावेश ने नाम वापस लेने के लिए ख़ूब दबाव बनाया. भावेश एक बार कह देता कि बड़े भाई के ख़िलाफ़ जाओगे क्या? तो वह पिघल भी जाता किंतु भावेश ने तो उसे उसकी औक़ात याद दिलानी चाही थी. उसकी गर्वदीप्त बातों ने गजानन को चुनाव जीतने की ललक जगा दी. वह सुबह से शाम तक अपनी बैलगाड़ी ले, घर-घर जाकर वोट मांगता. समस्याएं सुनता. मदद का आश्वासन देता. जल्द ही चुनाव अमीर-ग़रीब, दुर्बल और निर्बल की लड़ाई में बंट गया. भावेश दादा से उकताए लोगों ने भी गुपचुप आर्थिक मदद दी. राजनीति की यही तो ख़ूबी है यहां दोस्तों और दुश्मनों के चेहरे एक जैसे दिखते हैं.

कुछ देशभर में चलती लहर का प्रभाव, कुछ समय-असमय लोगों की यथा-संभव की गयी मदद से अर्जित छवि, कुछ विधि का विधान, गजानन ने इतिहास रचते हुए साठ हज़ार वोटों से भावेश को हरा दिया. भावेश अब पछता अवश्य रहा था. युद्ध में विरोधी को कमज़ोर समझने का परिणाम बुरा हुआ था.

सक्रिय राजनीति में यह गजानन का पहला क़दम था. वादे करके मुकर जाने या उन्हें विस्मृत कर देने की कला का अभी उसे अभ्यास नहीं था. रोज़गार और जल-आपूर्ति की आस लिये लोगों ने उसे वोट दिया था. वह भी उनका कर्ज़ उतारना चाहता था.

मानसून से पहले सभी जलस्त्रोतों के जीर्णोद्धार के सुप्रीम कोर्ट के आदेश ने उसे राह दिखा दी थी. मनरेगा के तहत नहरों और तालाबों की खुदाई और सौंदर्यीकरण के कार्य से हज़ारों लोगों को रोज़गार मिल सकता था.

अपने क्षेत्र के सभी पुराने तालाबों के नक्शे निकलवाकर कार्य बांट दिया था किंतु बड़े बाज़ार के मध्य स्थित तालाब की खुदाई रुकवा दिये जाने का समाचार मिला. वह शीघ्र वहां पहुंचा. नगर पंचायत अधिशासी ने कहा, 'सरकारी ज़मीन पर बिना परमिशन खुदाई नहीं हो सकती. नो ऑब्ज़ेक्शन सर्टिफ़िकेट दिखाइए.'

गजानन के लिए यह बड़ा धक्का था. एक ही सत्ता के दो अधिकारी विपरीत खड़े थे. अगले ही दिन नगर पंचायत की आपत्ति का भी ऑर्डर मिल गया. उनके अनुसार ज़मीन नगर पंचायत के नाम कृषि केंद्र बनाने हेतु दर्ज़ है.

'क्षेत्र का बच्चा-बच्चा जानता है कि यह तालाब है. तालाब न होता तो इसे आनंद तालाब क्यों कहा जाता', उसके कार्यकर्ताओं ने दलील दी.

'तुमने कभी देखा यहां पानी भरा हुआ? कहां है तालाब दिखाओ!' विपक्षी प्रतिवाद करते. यह सच था कि तालाब के क़िस्से गांव के बुज़ुर्गों के मुंह से ही सुने गये थे. हां, एक छोटा-सा मंदिर ज़रूर समय की मार सहकर भी अपनी जिजीविषा के साथ जर्जर अवस्था में दिखता था, जहां संतान न होने पर गांव की महिलाएं पूजा-अर्चना करती दिख जाती थीं.

'दिखता तो भगवान भी नहीं लेकिन होता है', किसी ने कहा. बात तालाब से आस्था पर पहुंच गयी और दोनों गुटों में हाथापाई होने लगी.

गजानन नैराश्य में डूब रहा था. तंत्र के बाहर रहकर उसने जाने कितने लोगों के अटके काम करवाए थे किंतु तंत्र का भाग बनने के बाद वह दस्तावेज़ों में उलझकर रह गया था. उसके अधीनस्थ अफ़सर और कर्मचारियों पर भी भावेश का दबदबा स्पष्ट समझ आ रहा था. अभिजीत शिंदे से बात की. उसने कितनी सुनी, कहना मुश्किल था किंतु सांसद की दखल व मुख्यमंत्री से शिकायत की धमकी देकर दस्तावेज़ों की खोज अवश्य शुरू हो गयी. अगले कई दिनों की भाग-दौड़ से सौ साल पुराने राजस्व अभिलेखों की छान-बीन में विवादित ज़मीन, ज़मीदार परमानंद के नाम तालाब के रूप

में ही दर्ज़ निकली. लोगों का कहना था कि कोई मन्नत पूरी होने पर उन्होंने यह तालाब खुदवाया था. कालांतर में विकास ने तालाब को चारों ओर से आ दबोचा. ज़मीन पर अतिक्रमण करते-करते, तालाब को भी पाटने में संकोच न किया गया. खेत के मध्य बना तालाब अब मुख्य बाज़ार के बीचों-बीच हो गया था. परमानंद की वंशावली के आख़िरी वाशिंदे गिरधर नारंग निसंतान थे. गिरधर नारंग ने मृत्यु पूर्व यह तालाब अजीत नारंग को बेच दिया था जिनकी दोनों पुत्रियां दूर क्षेत्रों में ब्याही जा चुकी थीं. गिरधर नारंग के पश्चात कुछ अनचीन्हें मालिकों से होता हुआ यह विवादित टुकड़ा अब एक समतल ज़मीन के रूप में भावेश के नाम दर्ज़ था. तालाब के चारों ओर की दुकानें नगरपालिका के अधीन थीं.

'जलस्रोतों पर मालिकाना हक़ नहीं जताया जा सकता. उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त नहीं हो सकती', गजानन ने भावेश के मालिकाना हक़ पर आपत्ति जतायी. निरंतर प्रयासों से विवादित स्थल पुनः तालाब स्वरूप में अभिलेखों में दर्ज़ कर लिया गया.

गिरधर नारंग का नाम चर्चा में आने पर, कस्बे के लोगों में उनसे संबंध निकालने की होड़–सी मच गयी थी. विशेषकर राम स्वरूप सक्रिय रूप से गजानन की मदद के लिए आगे आया था. दोनों ने नगरपालिका अध्यक्ष राकेश कुमार से मुलाक़ात की. उसने कहा, 'काम तो सिस्टम से ही होगा. हर काम के लिए बज़ट निर्धारित होता है. पैसे का प्रबंध कैसे होगा. टेंडर निकालना होगा.'

'आप पैसे की चिंता मत कीजिए. टेंडर निकालिए. मैं विधायक निधि से प्रबंध कर दूंगा', गजानन के लिए अब यह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था.

'बस, सब दिक़्क़त ही ख़त्म', राकेश कुमार ने कुटिल मुस्कान बिखेरी.

'पैसा भगवान तो नहीं पर मां कसम भगवान से कम भी नहीं. पैसे का इंतज़ाम हुआ तो समझिए काम भी हो गया', आगे बोला.

कुछ और निर्लज्ज बातों के पश्चात उसने अगले माह तीन तारीख़ को टेंडर लगाने का आश्वासन दे दिया था. दोनों वहां से सीधे अभिजीत शिंदे के पास पहुंचे. उसकी सलाह पर आनन-फानन में उर्मि इंटरप्राइज़ेज़ का रज़िस्ट्रेशन कराया गया और अगले हफ़्ते तीन तारीख़ को खुदाई शुरू करा दी गयी.

भावेश के लोगों ने आकर खुदाई रुकवा दी और मार-पीट शुरू हो गयी. यहां तक कि भावेश स्वयं भी आ खड़ा हुआ. गजानन ने कहा टेंडर के तहत कंपनी को खुदाई का काम दिया गया है. भावेश ने फ़ोन करके राकेश कुमार को बुला लिया. वह खीसें निपोरते हुए बोला कि तकनीकी कारणों से आज टेंडर खुल नहीं पाया. अब अगले महीने ही संभव हो पाएगा.

गजानन समझ चुका था कि प्रदेश और केंद्र की सत्ता से पृथक समीकरण क्षेत्रीय राजनीति में हैं. विधायक न रहने पर भी भावेश के आदमी पूरे तंत्र में अपनी जड़ें जमाए हैं. अपमान और क्षोभ से उसका चेहरा लाल हो गया. लड़ाई यूं नहीं जीती जा सकती थी. काम रोक देना पड़ा.

'राम स्वरूप, जनता ने चुनाव जिताया था. जनता ही तालाब बनवाएगी. अगले महीने का इंतज़ार नहीं किया जा सकता', गजानन ने चिंतित स्वर में कहा.

राम स्वरूप भी राकेश कुमार की मंशा समझ रहा था.

☐

खेतों में फ़सल बरखा रानी के मृदुल स्पर्श के इंतज़ार में खड़ी थी. अपने-अपने कुलदेवता को मनाते, किसानों की आंखें निरभ्र आकाश को निहारती थीं.

'बारिश नहीं हुई तो फ़सल बर्बाद हो जाएगी. मूंगफली में दाना नहीं पड़ेगा', उंसास छोड़ते वे एक दूसरे से कहते.

गजानन को पता चला कि भावेश एक हफ़्ते के लिए, बहन की शादी करने बाहर जा रहा है. इस अवसर का लाभ उठाना ज़रूरी था. जल्द ही 'बूंद' नाम का एन. ज़ी. ओ. सक्रिय हो गया. किसानों को जल संरक्षण के लाभ बताये गये. भावेश के शहर छोड़ते ही, ज़ेसीबी की मदद से तालाब की खुदाई चालू कर दी गयी. समय कम था, काम अधिक.

उसके समर्थक जब विरोध करने इकट्ठे हुए तो लोगों ने उन्हें घेर लिया.

'किसी एक का नहीं है तालाब, हम सबका है. एक-एक बूंद पर पूरे गांव का हक़ है. हमारे खेतों के लिए, बच्चों के लिए, जीवन के लिए हम जलस्रोत मिटने नहीं देंगे', इंद्र देवता के सताए लोगों ने आक्रोश ज़ाहिर किया.

दो दलों के परस्पर वैमनस्य और सत्ता की लड़ाई, अब जन आंदोलन का उग्र रूप ले चुकी थी. अपने संबंधों और ताकत का उपयोग कर, भावेश ने तालाब की मिट्टी

अवैध रूप से बेचने का आरोप लगाते हुए बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू से स्टे लगवा दिया. काम फिर रोक देना पड़ा. आरोप प्रत्यारोपों का बाज़ार चल निकला. गजानन ने पूर्व सरकार की मिलीभगत से अवैध खनन के आरोप भावेश पर लगाए. भावेश ने भूखंड पर अनाधिकृत प्रवेश और मिट्टी बेचने के आरोप लगाए. तथा कथित खरीददारों के नामों की लिस्ट भी अख़बारों में उजागर कर दी गयी. आहत गजानन ने ख़बर की सत्यता प्रमाणित होने पर राजनीति से सदा के लिए सन्यास लेने की घोषणा कर दी.

□

सूरज कब का चढ़ आया था लेकिन मानसिक झंझावतों से जूझते गजानन ने रात का आंचल अभी छोड़ा नहीं था. अचानक बजे फ़ोन की घनघनाहट से आंखें मलते, उसने उर्मिला के आगोश से स्वयं को मुक्तकर, फ़ोन उठाया. राम स्वरूप ने जो ख़बर सुनायी, उसे सुन वह बिना कुल्ला किये ही, चप्पल पैरों में घसीटता नगरपालिका के कार्यालय चला आया था. राकेश कुमार ने अपने चरित्र के अनुरूप ही आचरण किया था किंतु गजानन को तब भी विश्वास नहीं हो रहा था. स्वयं मिले बिना रह नहीं पाया.

'लक्ष्मी को क्यों ठुकराते हैं, गजानन बाबू. उठा लीजिए चेक', राकेश कुमार ने अपनी छोटी किंतु तीक्ष्ण आंखों को चमकाते हुए कहा.

'आपने मदद का आश्वासन दिया था', गजानन ने निराशा से कहा.

'दिया तो था. टेंडर भी निकाला. पर ग्रामीण अभियंत्रण सेवा विभाग ने साठ लाख का प्रोजेक्ट बनाया है. आपने विधायक निधि से तीस लाख दिये हैं. निरस्त करना पड़ा टेंडर. मज़बूरी है. मज़बूरी समझते हैं न आप!'

'समझते तो ये भी हैं कि तुम किसकी भाषा बोल रहे हो', गजानन ने तंज किया.

'हम तो पूरा सहयोग कर रहे हैं. हम पर क्यों बिगड़ते हो विधायक जी! बाक़ी के तीस लाख का इंतज़ाम कर लीजिए. हमें क्यों आपत्ति होगी.'

'आपत्ति तुम्हें नहीं तुम्हारे...', राम स्वरूप आग-बबूला होता हुआ मुंह से बरबस निकलते हुए शब्दों को अंदर सटक गया.

गजानन ने हाथ पकड़कर शांत रहने का इशारा किया. पानी में रहकर मगर से बैर लिया जा सकता है पर जब पानी ही विषाक्त हो तो पार पाना सुगम नहीं. समझ रहा था सब. टेंडर निरस्ती के क़ाग़ज और चेक उठाकर बोझिल मन से उठ खड़ा हुआ.

'बैठिए... नाराज़ क्यों होते हैं. चाय पीते जाइए. तालाब खोद भी लेंगे तो पानी कहां से लाएंगे? चार साल से तो सूखा पड़ा है. ये फुहारें तो ज़मीन छूने से पहले ही भाप बन जाती हैं,' राकेश कुमार खिड़की से बाहर देखते हुए, धृष्टता से हंसता हुआ बोला.

वे बिना कोई जवाब दिये बाहर चले आए. पेड़ों की अंधाधुंध कटाई और खनन के चलते हराभरा क्षेत्र अब हर बरस सूखे की चपेट में आने को अभिशप्त हो चुका था.

'साला, पैसे खाये बैठा है. भावेश के आगे ज़ुबान नहीं खुलती इसकी', राम स्वरूप पीक थूकता हुआ बोला.

'आओ, चाय पी लें', गजानन नगरपालिका कार्यालय की दीवार से लगी चाय की गुमटी की ओर बढ़ गये. आते-जाते लोग विधायक जी प्रणाम कह, पैर छूने लगे. चाय का दौर चला तो विमर्श देश-विदेश की राजनीति तक पहुंच गया. जब श्रोता कम और वक्ता अधिक हो गये तब बिना किसी निष्कर्ष के सभा विसर्जित कर वे बाहर आ गये.

राजनैतिक बहस से प्रेरित होकर, हल्की फुहारें भी अपना स्वरूप बदल पूरे वेग से बरस रही थीं. एक छतरी के नीचे सिमटकर चलते उनका मन पानी से नहीं, टेंडर निरस्त होने की निराशा से अधिक भीगा था. बारिश से सुनसान पड़े बाज़ार की सड़क पर अचानक बच्चों का एक रेला उन दोनों को धकेलता हुआ, शोर मचाता आगे बढ़ गया. अप्रत्याशित धक्के से नीचे गिर गये, कीच-युक्त क़ाग़जों को उठा कर वे संभल पाते, इससे पहले ही दूसरा रेला दौड़ता हुआ आया और मिट्टी की फिसल पट्टी पर रपटता तालाब में कूद गया. बच्चे गा रहे थे —

'हरा समंदर, गोपीचंदर, बोल मेरी मछली कितना पानी!'

गजानन ने एक भरपूर नज़र तालाब पर डाली. मुस्कराकर राम स्वरूप की तरफ़ देखा और पूछा — 'दस फ़ीट?'

राम स्वरूप ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा, 'दस फ़ीट से एक सूत भी कम नहीं.'

'जनता ही सरकार है, जनता ही सर्वोच्च न्यायालय', गजानन ने छतरी बंद करते हुए कहा और दोनों हाथ फैला, बंद आंखों से बारिश का आनंद लेने लगा.

अग्रवाल क्लीनिक्स, एम. एल. बी. मेडिकल कॉलेज़ के गेट नं. २ के सामने, झांसी- २८९१२८ (उ. प्र.)

एक नयी ज़िंदगी

रवि शंकर सिंह

८ अक्तूबर १९५८, ग्राम : धनौरा, भागलपुर (बिहार).
शिक्षा : स्नातकोत्तर (हिंदी), पीएच. डी.
: प्रकाशन :
हंस, कथादेश, वागर्थ, वर्तमान साहित्य, जनसत्ता, अक्षरपर्व, परिंदे, संवेद, जनमत, जनपथ, अलाव, प्रगतिशील वसुधा, कथाबिंब, कल के लिए, किस्सा, अंगचम्पा, समकालीन भारतीय साहित्य आदि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएं एवं आलेख प्रकाशित.
कथा लघुकथा (कथा संग्रह), तुमको नहीं भूल पाएंगे (कथा संग्रह).
: सम्मान :
महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान (सुसंभाव्य पत्रिका, भागलपुर), कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार (कथाबिंब पत्रिका)
: संपादन सहयोग :
अंगचम्पा पत्रिका

पुरुलिया से डेढ़ किलोमीटर दूर बसा है सीमनपुर गांव. ऊबड़-खाबड़ धरती. दूर-दूर तक फैली पुटुस और बेहया की झाड़ियां. महुआ, नीम और ढाक के पेड़ों की हरियाली से आच्छादित इलाक़ा. यहां अनेक कुष्ठ रोगी स्वस्थ होने के बावजूद अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं. कुछ लोगों को सरकारी अनुदान मिल रहा है, तो कुछ लोगों को पुनर्वास परियोजना के मकान भी आवंटित किये गये हैं. कुछ लोग भीख मांगकर, तो कुछ लोग बांस और बेंत की सामग्री बनाकर और कुछ लोग छाऊ नृत्य के लिए मुखौटे बनाकर अपना जीवन यापन कर रहे हैं.

पुरुलिया का छाऊ नृत्य काफ़ी प्रसिद्ध है. इस नृत्य में कलाकार विभिन्न देवी-देवताओं के मुखौटे पहनकर नृत्य करते हुए रामायण एवं पुराणों के तरह-तरह के चरित्र और घटनाओं को दर्शाते हैं.

वहां बसंत में चैत पर्व के अवसर पर तेरह दिनों तक नृत्य का समारोह चल रहा था. खुले मैदान में लगभग बीस फ़ुट चौड़ा एक घेरा था, जिसके बीच नर्तकों के आने-जाने के लिए पांच फ़ुट का गलियारा बना था. एक गोलाकार घेरे में नृत्य हो रहा था. पांच-छह बजनिए अपने-अपने बाजों के साथ एक तरफ़ बैठे थे. वाद्ययंत्रों में मुख्य रूप से माहुरी, शहनाई, ढोल, धुस्मा, खरका और बैंजो की लोक धुन लॉउड स्पीकर पर गूंज रही थी. वहां रोशनी की व्यवस्था के अलावा किसी प्रकार की सजावट नहीं थी. लोक संगीत की धुन पर नर्तक जरीकि ये राजसी वस्त्र और मुखौटा पहनकर युद्ध के तकनीक, पशुओं की गति और चाल को प्रदर्शित कर रहे थे.

उन कलाकारों में अजय अपनी भावनाओं और विषय वस्तु को, शरीर के आरोह-अवरोह, मोड़-तोड़, पद संचालन एवं गत्यात्मक संकेतों द्वारा व्यक्त कर रहा था. उसके नृत्य में लय और ताल के साथ पद संचालन को

देखकर दर्शक वाहवाह कर रहे थे. दर्शकों के बीच बैठी काजल अजय की भाव-भंगिमा देखकर मुग्ध हो रही थी.

नृत्य समारोह संपन्न होने के उपरांत काजल ने अजय से पूछा, 'तुम अपने शरीर में कमान जैसी लचक और बिजली जैसी फुर्ती कहां से लाते हो?'

'यह भी एक साधना है काजल. इसके लिए मैंने बरसों अभ्यास किया है. रोज़ कसरत करता हूं, सुबह-शाम दौड़ लगाता हूं. यक़ीन ना आए तो कभी मेरे साथ सुबह-सुबह वाकिंग के लिए निकलना.'

एक दिन काजल अजय के साथ मार्निंग वाक के लिए निकली. अजय के लिए दस किलोमीटर तक वाक करना आम बात थी. बहुत तेज़ चलता था अजय. लंबा होने के कारण वह लंबे-लंबे डग भरता हुआ चलता था. उसके साथ चलने के लिए काजल को दुलकी चाल में लगभग दौड़ते हुए चलना पड़ रहा था. थोड़ी देर बाद ही उसने हांफते हुए कहा, 'बस करो अजय. आज बस इतना ही, लेकिन मैं रोज़ तुम्हारे साथ घूमने के लिए निकलूंगी.'

सीमनपुर गांव में कुष्ठ रोगियों के लिए एक बड़ा अस्पताल है. अजय वर्षों से इसी अस्पताल के रोगियों की सेवा-सुश्रुषा करता है, उनके घाव पर मरहम-पट्टी लगाता है, दवा का छिड़काव करता है और शाम ढलने पर अस्पताल के काम-काज से फ़ुर्सत पाकर अजय छाऊ नृत्य का अभ्यास करता है.

अजय अस्पताल के रोगियों के घावों पर ही नहीं, बल्कि उनके दिलों पर भी मरहम-पट्टी लगाता है. अब यही उसका परिवार है और इन्हीं लोगों के बीच उसके दिल को सुकून मिलता है.

एक दिन पैंतीस चालीस साल की एक महिला अस्पताल में एडमिट होने के लिए आयी. वह साड़ी के पल्लू से अपना मुंह दबाकर फफक-फफककर रो रही थी. अस्पताल की नर्सें और कर्मचारी उसे सांत्वना दे रहे थे.

उसे एडमिट कराने के लिए उसका पति आया था. उसके पति और परिजनों के मिलने–जुलने का सिलसिला कुछ दिनों तक तो ठीक-ठाक चला, लेकिन कुछ दिनों में यह अंतराल बढ़ता गया. धीरे-धीरे वक़्त ने उसे अस्पताल के माहौल में जीना सिखा दिया.

सबेरे-सबेरे कैंपस में फूल तोड़ना, पूजा-अर्चना करना उसकी दिनचर्या बन गयी. सूर्य भगवान को अर्घ्य देते समय उसके होंठ बुदबुदाते, 'हे प्रभु! मेरे अपराधों को क्षमा करो! मुझे फिर से कंचन काया दो प्रभु!'

युवती का नाम काजल था. अजय और काजल आपस में मिलते-जुलते, बातें करके अपने मन को हल्का कर लेते, जैसे जल बूंदों को बरसाकर आकाश साफ़ और शांत हो जाता है.

काजल से जब कोई उसके घर परिवार और पति के बारे में पूछताछ करता तो वह मानो ख़ुद को ही दिलासा देती हुई कहती, 'क्या किया जाए? घर में बहुत काम हैं. घर-गृहस्थी है, बाल बच्चे हैं. उन लोगों को सब कुछ देखना पड़ता है ना.'

काजल जल्दी ही आश्रम के लोगों की उनकी ज़रूरत बन गयी थी. किस रोगी को किस समय कौन-सी दवा पिलानी है, किसके घाव को धो-पोंछकर मरहम पट्टी करनी है, इसकी फ़िक्र नर्सों से ज़्यादा उसे रहती.

'काजल बेटा! एक ग्लास पानी पिलाना तो!'

'अभी आयी काका.'

'मेरे कपड़े नहीं मिल रहे हैं काजल!'

'वहीं अलगनी पर कपड़ों के नीचे दबी हुई है मासी.'

'बेटा! जरा पता लगाना तो ऑफ़िस में मेरे लिए फ़ोन आया था क्या? '

'अभी आयी दादी मां.'

एक दिन अजय और काजल लान में बैठकर बातें कर रहे थे. अजय ने काजल को दिलासा देते हुए कहा, 'तुम अपना मन इतना छोटा क्यों करती हो? देखना तुम जल्दी ही स्वस्थ हो जाओगी.'

'सच कहूं अजय, मुझे अपनी बेबी की याद बहुत सताती है. यह भी सोचती हूं कि इस बरस मां दुर्गा की पूजा कैसे होगी? कलश-स्थापना कैसे होगी?' काजल फफककर रो पड़ी.

अजय ने उसे ढांढस बंधाते हुए कहा,'पहले तुम ठीक हो जाओ, फिर अपने घर-संसार की चिंता करना.'

'मैं ठीक हो जाऊंगी?'

'बिल्कुल ठीक हो जाओगी. इसका इलाज़ लंबा है, लेकिन यह रोग लाइलाज़ नहीं है.'

'मैंने सुना है कि एक बार यह रोग लग जाये तो फिर छूटता नहीं है. '

'किसने कहा?'

'लोग तो यही कहते हैं.'

'लोगों की ऐसी की तैसी... किसी ने तुम्हारे भेजे में भूसा भर दिया है. तुम डॉक्टर मानस चटर्जी को जानती हो ना?'

'हां, वही डॉक्टर ना जो कोलकाता से आते हैं!'

'.... हां वही. उन्होंने इसी आश्रम की एक लड़की का इलाज़ किया और फिर उससे विवाह भी किया...'

'सच...?'

'....और नहीं तो क्या. उस लड़की का नाम जूली है. जूली अब बहुत बड़ी अफ़सर बन गयी है. बहुत जहीन लड़की है जूली. जब रोग डिटेक्ट हुआ, तो उसके घर वाले उसे यहां ले आये. वह भी बहुत रोती रहती थी. वह डॉक्टर से पूछती, 'डॉक्टर साहब! क्या मैं कभी नॉर्मल जीवन नहीं जी सकती हूं?'

डॉक्टर उसे समझाता था, 'क्यों नहीं? अब कुष्ठ रोग का इलाज़ बिल्कुल संभव हो गया है. आज कल इस रोग का मल्टी ड्रग थैरेपी से इलाज़ किया जा रहा है और रोगी रोग मुक्त होकर एक सामान्य ज़िंदगी जी रहे हैं.'

'दिलासा देना आपका प्रोफ़ेशन है डॉक्टर साहब!', वह कहती.

अजय अपनी बात बोल कर ख़ामोश हो गया.

'फिर..?',काजल की उत्सुकता बढ़ गयी थी.

'...उस रात आश्रम की ओर से रोगियों का सेलिब्रेशन शो चल रहा था. उसमें हमारे दल ने भी छाऊ नृत्य का रंगा-रंग कार्यक्रम पेश किया था. भारी भीड़ थी. जूली ने भी एक गीत गाया था. उसके स्वर में कैसी कशिश थी. पूरा हाल स्तब्ध था. सबकी आंखें नम थीं. अचानक डॉक्टर मानस चटर्जी अपनी सीट से उठे और उन्होंने माइक पर कहा, 'मिस जूली. यहां एक साल पहले इलाज़ के लिए आयी थी. अब यह पूरी तरह से स्वस्थ हो गयी है. अब यह फिर से अपनी पुरानी दुनिया में लौट सकती है...'

जूली फफक पड़ी, 'डॉक्टर साहब! यह आप कह रहे हैं. तो क्या आपका वह नेह-छोह केवल एक दिखावा था?'

कुछ पल के लिए सब कुछ ठहर गया. डॉक्टर धीरे से उठा और उन्होंने घोषणा की, 'जूली! प्रत्येक रोगी की केयर करना, उसे स्नेह देना मेरा प्रोफ़ेशन है, लेकिन तुम्हारे मामले में सच कहूं मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूं. मैं तुम्हें सरप्राइज़ देना चाहता था. मैंने तुम्हारे माता-पिता से बात कर ली है.'

जूली को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था. उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहे थे. उसकी आंखों में ख़ुशी के आंसू छलक आये थे. कुष्ठग्राम के लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था.

कुछ दिनों बाद इसी शहर के मैरिज़ हॉल में उनकी धूमधाम से शादी हुई. शादी के कुछ दिनों बाद जानती हो क्या हुआ? वह सिविल सर्विसेज़ परीक्षा में चुनी गयी.

'जूली की छोड़ो. तुम मुझे ही देख लेना, मैं भी बिल्कुल ठीक हो गया हूं.'

'...तब तुम अपने घर क्यों नहीं गये?', काजल ने उसकी आंखों में झांकते हुए पूछा. इस अप्रत्याशित प्रश्न के उत्तर के लिए अजय तैयार नहीं था. उसने नज़रें चुराते हुए कहा, 'मेरी छोड़ो...!'

'क्यों तुम्हारा कोई घर-बार नहीं है?'

'... इन बातों को जाने दो. हम लोग फिर कभी बातें करेंगे. आज देखो आकाश में सूरज कितना ऊपर चढ़ आया है. मुझे कुछ ज़रूरी काम निपटाने हैं.'

'तुम्हें आज बताना ही पड़ेगा,' काजल अड़ गयी.

'अब तक किसी ने तुम्हें मेरे बारे में बताया नहीं?

'हां! मैंने दूसरों से कुछ-कुछ सुना है, लेकिन मैं सोच रही थी कि कभी तुम्हारे मुंह से पूरी कहानी सुनूंगी. आज बात खुल ही गयी है, तो ख़ुद ही बता दो.', काजल ने इसरार किया.

वह ओस में नहाई हुई शरद की सुबह थी. हवा में सिहरन थी. लान में हरसिंगार के फूल ज़मीन पर बिखरे पड़े थे. क्यारियों में गेंदा, डहेलिया और गुलदाउदी के फूल खिले थे.

अजय ने उसे अपनी आप बीती बतायी, 'गांव में मेरे बीवी बच्चे हैं. आठ साल का बेटा और पांच साल की बेटी. माता पिता हैं. मेरे दो बड़े भाई हैं. पिताजी की पेंशन और खेती के सहारे मेरी गिरस्थी की गाड़ी ठीक-ठाक चल रही थी. लेकिन इस रोग ने मुझसे मेरा सब कुछ छीन लिया.

एक दिन मेरी पत्नी ने कहा, 'देखो, तुम्हारी दाहिनी कलाई पर लाल रंग का चकत्ता उभर रहा है.'

मैंने भी गौर किया, पत्नी ठीक बोल रही थी. कुछ

दिनों में चकत्ता गालों पर भी उभर आया. ना खुजली, ना दर्द. धीरे-धीरे यह दाग बढ़ता ही गया. उन जगहों पर कोई सेंसेशन नहीं था. ना तो चिमटी लगती, ना सूई चुभती. कुछ दिनों के बाद मेरी दायीं कलाई सूखने लगी और हाथ की अंगुलियां टेढ़ी हो गयीं. मेरे नथुनों में सूजन आ गयी. कानों के पास गांठें निकल आयीं. पत्नी बार-बार कहने पर एक दिन मैं डॉक्टर के पास गया. पैथोलॉजी से स्किन टेस्ट और ब्लड की रिपोर्ट आयी तो सबको सांप सूंघ गया.

डॉक्टर ने बताया, 'इन्हें लेप्रोसी है. लेकिन इससे घबराने की ज़रूरत नहीं है. लेप्रोसी का छह से बारह महीने का कोर्स है. इसके बाद यह पूरी तरह ठीक हो जाता है. इसका इलाज़ महंगा है, लेकिन सरकारी अस्पताल में इसका मुफ़्त इलाज होता है. '

मैं यहां भर्ती हो गया. मैं साल भर में ही चंगा हो गया था. मैंने सोचा, अब गांव में जमकर खेती करूंगा. दो-चार बीघा ज़मीन बटाई पर भी ले लूंगा. मगर घर पहुंचने पर मेरा दिल टूट गया. मुझे लगा कि मैं उनके बीच अवांछित हूं.

'तुम तो पूरी तरह ठीक होकर गये थे न?'

'...तो क्या? मैं लोगों के दिमाग़ तो नहीं ठीक कर सकता था. मैं किसको-किसको समझाता कि अब चाल मोगरा का तेल लगाकर लेप्रोसी ठीक करने का जमाना नहीं रहा. आज इसका मुकम्मल इलाज़ है. अब मैं पूरी तरह स्वस्थ हो चुका हूं. पर किसी ने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया.'

'और तुम्हारी पत्नी...?'

'उसकी छोड़ो. एक रात मैंने जीजाजी को उसके कमरे से बाहर निकलते हुए देखा. मैंने पत्नी से पूछा, 'यह सब मैं क्या देख रहा हूं?'

उसने मुझसे मुंह फेरते हुए कहा,'गांव में सतभतरी होकर जीने से तो अच्छा है कि किसी एक का दामन थाम लो. मैंने वही किया. तुम्हें क्या पता कि मुझे अकेली जानकर लोगों ने मेरा जीना हरामकर दिया था. मैं शौक से जीजाजी की गोदी में नहीं बैठ गयी हूं. तुम्हारे अंदर मर्दानगी है तो उसे घर से बाहर खदेड़कर दिखाओ.'

जीजाजी दबंग हैं. उन पर खून के कई इल्ज़ाम है. वे न जानें कितनी बार जेल जा चुके हैं. उन्होंने मुझे धमकी दी, 'अगर सलामती चाहते हो तो अपनी जुबान पर ताला लगाकर रहो. इसी में तुम्हारी भलाई है.'

'जीजाजी से पंगा लेना मेरे वश में नहीं था. अब तुम्हीं बताओ कि मेरे पास क्या रास्ता बचा था?'

'गांव समाज ने कोई सहायता नहीं की?'

'गांव भी अब वैसा गांव कहां रह गया है. दूसरे की किसे परवाह है. मेरे परिवार के लोग ही मुझसे कटे-कटे रहने लगे थे. मेरा बिस्तर, मेरे खाने का बर्तन, मेरे कपड़े सब घर के बाहर एक कमरे में रखे गये थे. मेरी पत्नी मेरे बच्चों को भी मेरे पास नहीं आने देती थी.'

'उसके बाद तुमने क्या किया?'

'मैं वापस अस्पताल आ गया. मुझे यहीं नौकरी मिल गयी. मुझे परिवार का प्रेम नहीं मिला तो क्या हुआ. मैंने अपने परिवार का दायरा बड़ा बना लिया है. अब छाऊ नृत्य मंडली और अस्पताल के रोगी ही मेरा परिवार है. मानो तो सारा संसार ही अपना है, वरना सब झूठ है.' उसने हंसते हुए कहा था.

दिन, महीने, साल बीते. काजल अंदर से बहुत आशंकित और आतंकित थी. उसकी ससुराल के साथ-साथ उसके मायके के लोग भी उसके प्रति उदासीन थे. उसकी विधवा मां अपने पेंशन के पैसों में कतर-ब्यौत करके उसे कुछ रुपए भेज दिया करती थी, लेकिन उसके भाई और भाभी कभी उससे मिलने के लिए नहीं आये. डॉक्टरों ने स्वस्थ बताकर उसकी छुट्टी कर दी, तो उसे घर जाना ही पड़ा. कुष्ठग्राम के रोगियों ने अश्रुपूरित नयनों से उसे भावभीनी विदाई दी.

उसने अपने कपड़े, ज़रूरी क़ाग़ज़ात और दवाइयां आदि उसी अटैची में समेट लिये, जिसे वह अपने साथ लेकर आयी थी. अजय उसे बस स्टैंड तक छोड़ने के लिए गया था. बस की सीट पर बैठते हुए काजल ने अपने सामान पर एक नज़र दौड़ायी.

'इस पैकेट में क्या है अजय?', काजल ने पूछा.

'रास्ते में भूखी मरोगी क्या? मैं दुकान से पूड़ियां, सब्जी और कुछ मिठाइयां बंधवा कर ले आया हूं.', अजय ने हंसते हुए कहा.

आंचल से अपनी आंखों के कोर पोंछते हुए काजल ने कहा, 'तुम नहीं होते तो मेरे लिए यहां रहना बहुत कठिन हो जाता. मैं जा तो रही हूं, लेकिन तुम और यहां के लोग मुझे बहुत याद आएंगे.'

बस स्टार्ट हो चुकी थी. अजय ने हाथ हिलाते हुए

कहा, 'घर पहुंचकर फ़ोन कर देना ठीक है, वरना हमें चिंता लगी रहेगी.'

वह अप्रैल का महीना था. हवा के झोंके पर उसका मन हिरण-शावक की भांति कुलांचे भर रहा था. गुलमोहर और पलाश के लाल-लाल फूल खिले थे, मानों प्रकृति उसी की ख़ुशी का इज़हार कर रही हो. उसकी आंखों में अपनी बेटी, पति और परिवार की यादें हिलोरें ले रही थीं. उसे ट्रेन की रफ़्तार बहुत धीमी महसूस हो रही थी. उसे जल्दी से जल्दी अपने घर जाना था.

वह अपनी ससुराल पहुंची. मोहल्ले के बच्चे दूर से ही ताक-झांक करने लगे. पड़ोसियों ने उसे देखकर अपने-अपने दरवाज़े बंद कर लिये, जैसे कोई अजीब प्राणी उनके बीच आ गया हो. वह अपनी सासू मां को प्रणाम करने के लिए झुकी. उसकी सास ने कहा, 'ठीक है — ठीक है बहू! प्रणाम-पाती रहने दो. जाओ पहले नहा-धो लो... और हां, अभी तुम पिछवाड़े वाले कमरे में ही सोना-बैठना. अभी तुम्हारा सबसे मिलना-जुलना ठीक नहीं है.'

सासू मां की बातें उसके कलेजे में धक से लगीं. उसने कहा, 'मां जी! डॉक्टर साहब ने तो...'

'बहू, डॉक्टरों के कहने से क्या होता है? हमें अपना गांव-समाज भी देखना है. घर में देवता-पितर हैं. पहले कुलदेवी की पूजा-अर्चना होगी. तब फिर पवित्र करके तुम्हें घर में दाख़िल किया जायेगा.'

वह चुपचाप पिछवाड़े वाले कमरे में आराम करने के लिए चली गयी. वह बहुत देर तक इंतज़ार करती रही, लेकिन उसे अपनी बेटी नहीं दिखी. उसने सासू मां से पूछा है, 'मां जी! बेबी नहीं दिखाई दे रही है?'

'बहू! तुम्हें क्या बताऊं कि तुम्हारे कारण हमें क्या-क्या झेलना पड़ा है. अपने रिश्ते और गांव के लोगों ने हमें एक तरह से बहिष्कृत कर दिया है. बेबी पर लोगों की घृणा और उपेक्षा का असर नहीं पड़े, इसलिए मैंने उसे हॉस्टल भेज दिया है.'

काजल को कोई जवाब नहीं सूझा. अपने कमरे में जाते हुए उसने कहा, 'आपने ठीक ही किया मां जी.'

तारीख़ें बदलती रहीं, लेकिन उसके प्रति सासू मां का व्यवहार नहीं बदला. उसका पति तो उसे फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहता था. उसकी हर रात सूनी बीतती है और हर दिन उदास.

पूरा महीना भी नहीं बीता कि एक दिन अचानक कुष्टग्राम में काजल को देखकर लोग चकित हो गये. अपने कपड़े आदि बदलकर वह अजय से मिलने के लिए गयी. उसे देखकर अजय ने पूछा, 'तुम क्यों लौट आयी?'

प्रश्न के बदले प्रति प्रश्न,'तुम क्यों लौट आये थे?'

'... मेरी छोड़ो तुम अपनी बताओ.'

'क्या बोलूं?'

'कुछ तो बोलो? तुम अपना घर-बार छोड़कर यूं ही तो नहीं लौट आयी?'

'अपना घर! (उसके होंठों पर एक विद्रूप हंसी है) जिसे तुम अपना घर-बार कहते हो, वह सबसे बड़ा धोखा है. इस दुनिया में अपना कुछ भी नहीं है. जो कुछ भी आज तक तुम्हारा है, वह कल किसी और का होगा. यह दुनिया रोज बदल रही है. लोग बदल रहे हैं. उनके विचार बदल रहे हैं. हम जिस अपना पेके भ्रम में जीते हैं न, वह बेकार है.'

'तुम्हें नहीं बताना है तो कोई बात नहीं.'

वह अपने चेहरे को आंचल में छुपाकर फफक-फफककर रोने लगी, 'तुम्हें नहीं बताऊंगी तो और किसे बताऊंगी! तुमसे बड़ा हमदर्द यहां मेरा कौन है?'

'... तो बताओ फिर.'

'सारी बातें बाहर ही पूछ लोगे? मुझे अपने कमरे के अंदर आने के लिए नहीं कहोगे?'

अजय ने लजाते हुए कहा, 'अरे हां ! मैं तो भूल ही गया था. चलो चाय की दुकान पर चलकर पहले चाय पीते हैं. वहां आराम से बैठकर बातें करेंगे.'

चाय की चुस्की लेते हुए काजल ने बताया, 'तुम मेरी कहानी सुनना चाहते हो ना ! ...तो सुनो. मेरे प्रति मेरे पति राकेश के व्यवहार को सुनकर मेरी मां बहुत दुखी हो गयी. मेरी मां ने सोचा, 'कुछ दिनों तक दोनों कहीं बाहर घूमने के लिए चले जाएं तो उनका मेल-जोल बढ़ जायेगा.'

...लेकिन मेरी मां का सोचना ग़लत था. मां ने मुझे राकेश के साथ वैष्णोदेवी की यात्रा पर भेज दिया. मैंने बहुत आरज़ू-मिन्नत करके राकेश को यात्रा पर जाने के लिए तैयार किया. यात्रा-ख़र्च मेरी मां ने भेज दिया था. ख़ैर, पहुंच ही गयी मैं देवी के सामने अपनी फरियादें लेकर. जैसे-तैसे देवी के दर्शन किये.

दूसरे दिन वापसी थी दिल्ली के लिए. मैंने राकेश से इसरार किया, 'दो दिन रुककर दिल्ली घूमा जाये.'

हम पहुंच गये दिल्ली. होटल का कमरा, एसी लगा हुआ, राकेश को तो मानो जन्नत ही मिल गयी थी.

रात को मैं राकेश की बगल में लेटी थी. मेरी आंखों में नींद न थी. राकेश लेटे-लेटे अख़बार पढ़ रहा था.

'सो गये क्या?' मैंने धीरे से पूछा.

'क्यों, तुझसे मतलब?', तल्ख़ी से राकेश ने कहा.

'बड़े दिनों बाद ऐसे होटल में रहने का मौक़ा मिला है.'

राकेश ने कोई जवाब नहीं दिया. मैं सोचने लगी कि जानें कितने दिन, महीने, साल बीत गये, राकेश मेरे क़रीब ही न आया था. जानें किस भाव में बहती हुई मैंने राकेश का हाथ पकड़ लिया.

एक झटके में अपना हाथ छुड़ाकर राकेश चिल्ला उठा, 'क्या है ये सब! अपने तिरिया चरित्र मुझे मत दिखा. फंसा रही है अपने जाल में मुझे?'

'क्यों इस तरह मेरा तिरस्कार करते हो?', कहते–कहते मैं राकेश के कंधे पर सिर रख रो पड़ी. राकेश ने मुझे इतनी जोर से धकेला कि मैं पलंग से नीचे गिर पड़ी.'

'तुम मां-बेटी इसी लायक हो!'

'मेरी मां ने क्या किया?'

'बहुत चालाक है तेरी मां. तेरे कोढ़ को छिपाकर उसने तुझे मेरे गले मढ़ दिया.'

'मैं क़सम खाकर कहती हूं, बचपन में ऐसा कुछ भी नहीं था.'

'जबान मत लड़ा. सो जा चुपचाप. तेरी तो ...', और मुझे एक भद्दी-सी गाली दी.

मैं थर-थर कांपने लगी थी. तन से ज़्यादा चोट मन पर लगी थी. जी कैसा हो आया. बाथरूम भागी जल्दी से उल्टी करने, पर राकेश को कोई फ़र्क न पड़ा.

जब तक मैं उल्टियां कर हाथ मुंह धोकर वापस आयी, तब तक राकेश सो चुका था. मैं सोचती रही कि आदमी कितनी जल्दी रंग बदलता है. क्या यह वही राकेश है जो मेरी ख़ूबसूरती पर अपनी जान छिड़कता था ? अब उसने अपने दिल से ही नहीं मुझे मेरी बच्ची से भी दूर कर दिया है.

अब तुम ही बताओ अजय मैं क्या कर सकती थी?', उसकी आंखें सावन भादों की तरह बरसने लगीं.

अजय ने उसके आंसुओं को पोछते होते हुए कहा, 'रोओ मत! तुम तो पढ़ी-लिखी हो फिर चिंता किस बात की? यहां एक स्कूल में शिक्षक की जगह खाली है. तुम चाहो तो वहां ज्वाइन कर सकती हो. पब्लिक स्कूल में तनख़्वाह थोड़ी कम है, लेकिन उससे गुज़ारा हो जायेगा. दिव्यांग भरण-पोषण अनुदान योजना के अंतर्गत दिव्यांगता के शिकार हुए लोगों को २५०० रुपये प्रतिमाह पेंशन दी जाती है. कुल मिलाकर इतने रुपये जीने के लिए काफ़ी हैं.'

'मैं इज़्ज़त की ज़िंदगी जीना चाहती हूं अजय.', काजल ने एक लंबी सांस लेते हुए कहा.

'तुम बुरा नहीं मानो तो मैं और एक बात कहना चाहता हूं.'

'कह डालो, तुम जो भी कहना चाहते हो.'

अजय ने अपनी पलकें झुकाते हुए कहा, 'काजल! क्या हम लोग एक नयी ज़िंदगी शुरू नहीं कर सकते हैं?'

'मतलब...?'

'मतलब कि क्या हम लोग शादी नहीं कर सकते हैं?'

'क्यों नहीं, लेकिन एक बाधा है. तुम ऊंची जाति के हो और मैं उम्र में तुमसे बड़ी भी हूं.'

'काजल! हम लोग ज़िंदगी के उस पड़ाव पर हैं, जहां जाति-धर्म और उम्र कोई मायने नहीं रखता है. हम एक नयी ज़िंदगी शुरू करेंगे. चलो हम अपना नया आशियाना बनाते हैं.', अजय ने काजल को अपने बाहुपाश में बांध लिया.

काजल ने अजय के कंधे पर अपना सिर रख दिया. उसकी आंखों से ख़ुशी के आंसू बह रहे थे, मानो अचानक बादल फटा हो और उसके सैलाब में वह अपना सारा दुख बहा देना चाहती हो.

पहली बार दोनों एक दूसरे के दिल की धड़कनें महसूस कर रहे थे. मौन की पारदर्शी दीवार के आर-पार वे देख रहे थे एक-दूजे को. वहां केवल मौन मुखर था.

दूर कहीं घनी अमराई से पपीहरा की दर्द भरी टेर सुनाई दे रही थी.

रघुवंशम, ए/०४, सालडांगा,
बरदेही रोड, लेन-१, पो. : रानीगंज,
जि. : पश्चिम बर्धवान-७१३३४७ (प. बं.)
ई मेल : ravishankarsingh1958@gmail.com
मो.:९४३४३९०४१९/७९०८५६९ ५४०

आमने-सामने

'लेखन मेरे जीवन का अहम् हिस्सा!'

✍ आचार्य नीरज शास्त्री

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी, श्याम सुंदर निगम, देवेंद्र कुमार पाठक, आनंद सिंह और डॉ. इंद्र कुमार शर्मा से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है आचार्य नीरज शास्त्री की आत्मरचना.

एक साहित्य समृद्ध परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे की बुनियाद साहित्य के धरातल पर ही आरंभ होती है. मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ. मेरे पिता जी पं. श्री हरिदत्त चतुर्वेदी 'हरीश' मथुरा जनपद के छोटे से नगर सोंख के निवासी थे. पूरे नगर में उनकी ख्याति एक श्रेष्ठ कवि के रूप में थी. पिताजी से पूर्व उनके बड़े भाई अर्थात् मेरे ताऊजी पं. श्री श्याम सुंदर चतुर्वेदी 'श्याम' अपने समय के सुप्रतिष्ठित साहित्यिक व्यक्तित्व थे. ऐसे परिवार में मेरा जन्म हुआ. अच्छे परिवार एवं शालीन मां की गोद के अलावा सरस्वती शिशु मंदिर तथा महर्षि दयानंद जूनियर हाईस्कूल भी आचार-विचार की पाठशाला बने.

परिवार की आर्थिक दशा ठीक नहीं थी फिर भी रहने के लिए दो कमरे का मकान पिताजी ने जैसे-तैसे बनवा लिया था. एक कमरे की छत लकड़ी की तख़्ती, फूंस और मिट्टी की बनी थी. छत के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां थीं. सीढ़ियों का दरवाज़ा टूटा हुआ था. उस दरवाज़े से होकर प्रायः बंदर और बिल्लियां घर के अंदर आ जाती थीं. ये जानवर हम बच्चों को बहुत डराते थे. उन दिनों पिताजी, मां और दादी मां से कविता, गीत, कहानी और लोक कथाएं सुनने का सुअवसर प्रतिदिन मिलता था. विद्यालय में भी गीत, कहानी और कविता के लिए अलग से पीरियड हुआ करता था. इसलिए घर में सुनकर याद किये कविता, गीत, कहानी विद्यालय में सुनाकर मैं अपने विद्यालय के अध्यापकों का प्रिय छात्र बन गया था. विद्यालय के आरंभिक दिनों में ही मैंने अपने अध्यापकों से स्वामी विवेकानंद के विषय में पूछा

क्योंकि मैंने उनके विषय में अपने घर में सुना था. उन्होंने बड़े भावपूर्ण ढंग से मुझे देश की धरती और युवा हृदय सम्राट श्री स्वामी विवेकानंद से जोड़ दिया. घर आकर मैंने अपने पिताजी, मां और दादी मां से इस विषय में बात की तो ये तीनों ही मुझे स्वामी जी के जीवन से जुड़ी कहानियां सुनाने लगे. उन्हीं दिनों से मेरा मन कल्पनाशील होने लगा था तथा मैं तुकबंदियां करने लगा था.

पिताजी के अथक परिश्रम से दो कमरे का एक मंज़िल का मकान, चार कमरे का दो मंज़िला मकान बन चुका था. नीचे के बाहरी कमरे में पिताजी की बैठक थी. घर में सुबह से शाम तक पिताजी के कवि मित्रों का आना-जाना लगा रहता था. देर रात तक साहित्यिक चर्चाएं एवं काव्य पाठ का दौर चलता रहता था. छः-सात साल की उम्र से ही मैं अपनी कक्षा की हिंदी की पुस्तक पहले चार-पांच दिनों में ही पूरी पढ़ लेता था और कविताएं कंठस्थ कर लेता था. इसके बाद अपने पाठ्यक्रम की कविताओं को तोड-मरोड़ कर नये रूप में उन्हें प्रस्तुत करता था. इस क्रिया में मुझे आनंद का अनुभव होता था. मुझे अब तक याद है; अपने पाठ्यक्रम की कविता — 'मैं सुमन हूं' को तोड़-मरोड़ कर मैंने 'मैं फूल हूं' कर दिया था. मेरी इस विचित्र कार्यवाही को मेरे पिताजी और मेरे शिक्षक संभवतः मेरी रचनात्मकता मानते थे. यही कारण था कि वे मुझे डांटने अथवा विरोध करने के स्थान पर मुझे उत्साहित करते थे. एक दिन, जब मेरी उम्र लगभग दस वर्ष रही होगी; एक विचित्र घटना घटी. घर में कवियों की महफ़िल सजी हुई थी.अनेक उच्च स्तरीय कवि उस समय वहां उपस्थित थे. इन कवियों में 'उमा' महाकाव्य के रचयिता तथा सुप्रसिद्ध महाकवि पं. अयोध्या प्रसाद 'द्रोण' भी उपस्थित थे. उस दिन मुझे न जाने क्या सूझा; एक हाथ में डायरी और एक हाथ में क़लम लेकर मैं भी बैठ गया और कुछ सोचने लगा. तभी आदरणीय 'द्रोण' जी ने मुझसे पूछा — 'क्या कर रहे हो बेटा?'

'कविता लिख रहा हूं' — मैंने उत्तर दिया.

मेरी बात सुनकर आदरणीय 'द्रोण' जी हंसे और बोले — 'बेटा! कविता लिखना बच्चों का काम नहीं है. यदि तुम कविता लिख लोगे तो हमें कौन पूछेगा?'

यह बात उन्होंने चाहे किसी भी मनोभाव के साथ कही हो, मैंने इसे चुनौती मान लिया. जब वे चलने लगे तो उनसे बैठने का निवेदन करते हुए कहा — 'आज आप मेरी कविता सुनकर ही जाओगे.'

उस दिन मैंने पहली स्वरचित कविता लिखी. जब यह कविता मैंने पढ़ी तो पूरी बैठक तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठी. पिताजी ने आशीर्वाद दिया. आदरणीय कविवर 'द्रोण' व अन्य कवियों ने भी आशीर्वाद देते हुए प्रसन्नता व्यक्त की. तभी से पिताजी ने मुझे अपने साथ कवि गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों में ले जाना आरंभ कर दिया. परीक्षा के दिनों में मैं पढ़ते-पढ़ते थक जाने पर कविता रचने लगता था. परंतु मेरे पिताजी, मां अथवा दादी मां ने कभी मेरे कविता सृजन का विरोध नहीं किया. वे सदा मुझे प्रोत्साहित करते रहे.

कवि गोष्ठियों एवं साहित्यिक कार्यक्रमों के समाचार उन दिनों अमर उजाला, दैनिक जागरण, दैनिक आज तथा राष्ट्रीय सहारा में फ़ोटो सहित हाईलाइट कर काफ़ी बड़े समाचार के रूप में प्रकाशित होते थे. पहली बार जब 'अमर उजाला' में मेरी कविता की पंक्ति समाचार की हैड लाइन बनी तो मुझे बधाई देने वालों की लाइन लग गयी. उस दिन पिताजी ने मुझे पुरस्कार के रूप में इक्कीस रुपये दिये. ये इक्कीस रुपये नोट न होकर सिक्कों के रूप में थे. उस दिन के अगले दिन उसी कविता की वही पंक्ति दैनिक आज और राष्ट्रीय सहारा में भी समाचार हैड लाइन बनी. इसके बाद तो प्रायः हर महीने मेरी किसी न किसी कविता की पंक्ति समाचार पत्र में हैड लाइन बनकर हाई लाइट होने लगी. इन्हीं दिनों मेरी कविताएं लोक शिक्षक (जयपुर), चतुर्वेदी संदेश (दिल्ली), पहल (सोंख), जगमग दीपक ज्योति (अलवर) तथा कुछ अन्य स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं. इन्हीं दिनों पिताजी ने कविता रचने के लिए समस्या पूर्ति देना भी आरंभ कर दिया था.

लगभग बारह वर्षीय यह बाल कवि नीरज चतुर्वेद हास्य कविताएं रचने लगा. हास्य कविताएं मैं केवल अपने मित्रों एवं मां को ही सुनाता था. ये रचनाएं अच्छी थीं किंतु किशोरावस्था के उन दिनों, अचानक एक विचार मन में आया कि हास्य मेरा विषय नहीं है. मुझे तो केवल वीर रस और करुण रस में ही कविता रचनी चाहिए. इसका कारण शायद देश प्रेम पगी रचनाओं एवं रचनाकारों के प्रति बढ़ती रुचि थी. राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान तथा माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य रचनाएं मेरे मन पर अधिक प्रभाव डाल रही थीं. अतः एक दिन सभी हास्य कविताओं को आग की भेंट चढ़ा दिया. तभी से देश के लिए और देश

का दर्द व्यक्त करने वाली रचनाएं रचने लगा. करुण रस और वीर रस मेरे प्रमुख रस बन गये.

संभवतः सन् १९८७ में मथुरा के महाविद्यालय मैदान में पहली बार सुनियोजित प्रदर्शनी का आयोजन हुआ था. इस प्रदर्शिनी में विराट अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन भी हुआ था. कवि सम्मेलन के मंच संचालक थे आदरणीय डॉ. शिव ओम 'अंबर'. उनके अलावा मंच पर डॉ. उर्मिलेश शंखधर, डॉ. अशोक चक्रधर, प्रदीप चौबे, प्रेम किशोर 'पटाखा' तथा डॉ. कुंवर बेचैन जैसे महान साहित्यिक हस्ताक्षर उपस्थित थे. इन सभी के दर्शन और श्रवण ने भी मुझे प्रेरणा दी. श्रद्धेय डॉ. शिव ओम 'अंबर' जी से प्रेरणा पाकर और पूज्य पिताजी का शुभाशीष पाकर मैंने साहित्यिक शैली में मंच संचालन करना सीखा.

चौदह-पंद्रह वर्ष की अवस्था आते-आते मैं कवि सम्मेलन के मंचों पर जाने लगा था. ब्रजभाषा के सशक्त हस्ताक्षर स्व. गोपाल प्रसाद मुद्‌गल एवं महाकवि द्रोण सहित अनेक कवियों का शुभाशीष मुझे राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी के कवि सम्मेलन में मिला. उन दिनों राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी, जयपुर की प्रतिष्ठित पत्रिका 'ब्रजशतदल' तथा मथुरा के यशस्वी साहित्यकार स्व. पं. उमाशंकर दीक्षित जी द्वारा संपादित 'जमुनाजल' में छपने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था. इसके बाद लोहागढ़ गौरव, लीजेंड न्यूज़, वामांगी और ऐसी ही अनेक पत्रिकाओं में छपने का सौभाग्य मिला. इन्हीं दिनों हाथरस के डॉ. जगदीश लवानिया, आगरा के डॉ. शिवसागर, रैपुरा के राम खिलाड़ी स्वदेशी, भरतपुर के डॉ. मूलचंद नादान, धनेश फक्कड़, निर्भय हाथरसी, आगरा की रानी सरोज गौरीहार, श्रीमती लता शबनम, श्री मदन मोहन 'उपेंद्र', ब्रजभाषा रत्न स्व. यमुना प्रसाद चतुर्वेदी 'प्रीतम' से परिचित होने तथा उनका शुभाशीष प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ.

मैं जब ग्यारहवीं कक्षा में मथुरा आकर यहां के सर्वश्रेष्ठ कॉलेज़ चंपा अग्रवाल इंटर कॉलेज़ में प्रविष्ट हुआ तभी मथुरा के साहित्यकारों से मेरी घनिष्टता हुई. यहां के लोगों में मेरा सर्वाधिक लगाव ब्रजभाषा रत्न स्व. पं. यमुना प्रसाद चतुर्वेदी 'प्रीतम', साहित्य गौरव स्व. मदन मोहन 'उपेंद्र' ओज के प्रखर कवि डॉ. सुरेश पांडेय तथा स्व. सत्येंदु याज्ञवल्क्य, स्व. पं. उमाशंकर दीक्षित (वरिष्ठ साहित्यकार) तथा वरिष्ठ कवि लेखक डॉ. राम निवास शर्मा 'अधीर' एवं पत्रकार कवि मित्र ए. एन. 'अनु' के साथ रहा.

स्व. दादा मदन मोहन 'उपेंद्र' का सान्निध्य मेरे विकास के लिए विशेष महत्वपूर्ण था क्योंकि 'सम्यक' पत्रिका के प्रकाशन में मुझे उनके सहयोगी होने का अवसर मिला. यही कारण है कि बाद में मैं स्वयं 'सम्यक' पत्रिका के अंक निकालने का साहस जुटा पाया. उन्हीं दिनों दैव योग से साहित्य गौरव कथाकार डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' जी से मेरी मुलाकात हुई. तब मैं गीत, छंद, ग़ज़ल और मुक्तक रचनाएं करता था. कविता मेरे लिए सृजन का विषय था. यही कारण था कि कविता-सृजन मेरे लिए जुनून बन गया था. यहां तक कि क़ाग़ज उपलब्ध न होने पर मैं बस और ट्रेन के टिकट तथा बिजली, दवाई और अन्य सामान के बिलों पर भी लिख लिया करता था. जब जहां भाव आया, लिख लिया. इस तरह लिखने और छपने में कोई कमी न थी. स्नातक एवं स्नातकोत्तर तक की हिंदी पाठ्‌यक्रम की पुस्तकें मैं चाव से पढ़ा करता था. हिंदी कथा साहित्य के कुछ शलाका पुरुष जैसे कथा सम्राट प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, यशपाल, सुदर्शन, भगवती चरण वर्मा, फणीश्वर नाथ 'रेणु', कमलेश्वर आदि की कहानियां बहुत अच्छी लगती थीं. उस दौर में मैंने अनेक कहानियां एवं गोदान, मृगनयनी, विराटा की पद्‌मिनी, शांता, गबन, चंद्रकांता, अतीत की परछाइयां आदि उपन्यास भी पढ़ लिये थे किंतु कहानी लेखन के प्रति कोई लगाव अथवा निष्ठा का प्रादुर्भाव मेरे ह्रदय में नहीं हुआ था.

श्रद्धेय गुरुवर डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' जी रेलवे में इलेक्ट्रीकल इंज़ीनियर होने के कारण मथुरा ज़ंक्शन के निकट बने रेलवे क्वार्टर में रहते थे. सन् १९९५ से मेरा उनके घर आना-जाना आरंभ हुआ. उनके व्यवहार में मैंने एक महान व्यक्तित्व की आभा देखी थी साथ ही उनका प्रेम मुझे उनसे मिलने को बराबर बाध्य करता था. उनकी सह्रदया पत्नी श्रीमती शशि पाठक जी का व्यवहार भी मेरे प्रति वात्सल्य एवं ममत्व से परिपूर्ण था. जिस तरह एक मां अधिकारपूर्वक अपने बच्चे को खिलाती-पिलाती है; ठीक उसी तरह वे मुझे सदैव खिला-पिलाकर ही भेजती थीं. श्रद्धेय पाठक जी मुझे कहानी लिखने को प्रेरित करते थे. हर बार मुलाकात होने पर वे मुझे किसी न किसी पत्रिका का पता देते और कहते कि कहानी लिखकर इसमें छपने के लिए भेजो. अनेक कहानियां मैंने उनके घर बैठकर ही पढ़ी भी थीं किंतु उनके द्वारा दिये गये पते पर मैं कोई न कोई काव्य रचना प्रकाशनार्थ भेज देता था, कोई कहानी न तो

मैंने लिखी और न ही प्रकाशनार्थ भेजी. सन १९९७ के आरंभ में एक दिन वे बहुत नाराज़ हुए और बोले — 'आप कहानी लिखने की कोशिश तो करिए, अगली बार आपको कहानी सुनानी ही पड़ेगी.' पहली बार मैंने उन्हें नाराज़ देखा था. इसका परिणाम यह हुआ कि सन १९९७ के आरंभ में ही मेरी पहली कहानी 'श्राप' कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई. यहां से मेरे कहानी लेखन का सफ़र आरंभ हुआ. श्रद्धेय पाठक जी मेरे प्रेरणा स्रोत गुरू बन गये. सन १९९५ से १९९७ के बीच साहित्य की कई महान हस्तियों से शुभाशीष भी प्राप्त हुआ. सफ़र चलता रहा. सन १९९७ से ही मैं प्रसार भारती से जुड़ा. आज मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि अब तक मैं लगभग पांच दर्ज़न से अधिक पुस्तकों की समीक्षा कर चुका हूं और लगभग दो दर्ज़न पुस्तकों की भूमिका लिखने का सुअवसर भी मुझे प्राप्त हुआ है.

सन २००० से ही मैं प्राइवेट विद्यालयों में पढ़ाने लगा था. तब इन विद्यालयों में होने वाले उत्सवों के लिए संभाषण, वाद-विवाद, स्वागत गीत, कविताएं और एकांकी नाटक लिखना आरंभ किया. मेरा सबसे पहला हास्य एकांकी 'साक्षात्कार' गांधी विद्यापीठ ज़ूनियर हाईस्कूल में सन २००० में २६ जनवरी के दिन अभिनीत हुआ था. दर्शकों की तालियों एवं उनकी सकारात्मक टिप्पणियों ने मुझे रंगमंचीय लेखन के लिए प्रेरित किया.

सन २००२ में मेरा विवाह पूनम चतुर्वेदी के साथ हुआ. मेरी शादी के अवसर पर बारात के द्वारा कवि सम्मेलन किया गया क्योंकि बारात में कवि ही कवि थे. सबसे ग़ज़ब की बात यह थी कि अपनी ही शादी के कवि सम्मेलन में मैं स्वयं मंच संचालक की भूमिका निभा रहा था. शादी के बाद कवि बलवीर सिंह जी के आग्रह और पत्नी के अनुरोध पर श्रृंगारिक गीत और मुक्तकों की रचना हुई. कुछ समय पश्चात कुछ विषम कारणों से घर छोड़ना पड़ा. एक स्थिति ऐसी भी आयी जब नींद ने मेरा साथ छोड़ दिया. मैं दिन भर काम करता था और रातभर चिंतन-मनन. ऐसी दशा में भी लेखन ने मेरे लिए दवा का काम किया. मैं मन के आवेगों को क़ागज पर उतारने लगा था. इस तरह जीवन के सभी संकटपूर्ण दिनों में लेखन ने मेरा साथ दिया.

सन् २००५ से मैं आगरा स्थापित हो गया तथा गायत्री पब्लिक स्कूल, आगरा में पी. जी. टी. (हिंदी) पद पर नियुक्त हुआ. दो महीने बाद विद्यालय के हिंदी विभाग का अधीक्षक मुझे बना दिया गया. तब विद्यालय की समस्त गतिविधियों, कार्यक्रमों एवं प्रतियोगिताओं के लिए मैं लिख रहा था. मेरे लिए सबसे महत्व की बात यह थी कि मेरे लेखन को विद्यालय प्रबंध समिति द्वारा सराहा जाता था. आगरा के प्राय: समस्त विद्यालयी पुरस्कार भी गायत्री पब्लिक स्कूल की झोली में आ रहे थे. यहां भी रंगमंच के लिए मैंने 'लोन' नामक एकांकी की रचना की थी. यह बहुत अच्छी एकांकी सिद्ध हुई. तब आगरा में सर्वश्री डॉ. श्री भगवान शर्मा जी, डॉ. राजेंद्र मिलन जी, श्री शीलेंद्र वशिष्ठ जी, श्री अशोक रावत जी, डॉ. खुशीराम शर्मा जी के साथ-साथ पद्मभूषण गोपाल दास 'नीरज' जी एवं उनकी पत्नी श्रीमती मनोरमा शर्मा जी के साथ भी मेरी बैठकें होने लगी थीं. मेरे मित्र कुमार ललित एवं संजीव गौतम भी उन दिनों आगरा में सक्रिय थे. तभी मैं विद्यालय में शाकाहार के प्रोत्साहन के लिए प्रदर्शनी कर रहा था.

सन् २०११ में मैं मथुरा लौट आया था. मथुरा में ही मेरी पहली ग़ज़ल कृति--'पत्थरों के शहर में' सन २०११ में ही प्रकाशित हुई. इसी पुस्तक के लोकार्पण के शुभ अवसर पर डॉ. अजय शुक्ला (अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार वैज्ञानिक), डॉ. मोहन तिवारी आनंद (कर्मनिष्ठा के संपादक) तथा लगभग तीन सौ साहित्यकारों की उपस्थिति में व श्रद्धेय डॉ. श्री भगवान शर्मा जी की अध्यक्षता में प्रथम साहित्यकार सम्मान समारोह का आयोजन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ. इक्कीस विशिष्ट साहित्यकारों को सम्मानित किया गया. तभी तुलसी साहित्य अकादमी की स्थापना की गयी जिसे सन् २०१७ में तुलसी साहित्य-संस्कृति अकादमी के रूप में पंजीकृत करा लिया गया. सन २०१३ में मेरी कहानी की कृति — 'रिश्तों का मान', प्रोत्साहन कृति — 'सफलता के सोपान' प्रकाशित हुई. सन २०१६ में 'कल्याण सूत्र: शाकाहार' प्रकाशित हुई. इसके बाद सन २०१८ में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के वित्तीय अनुदान से राष्ट्रीय गीत कृति 'भारत भाग्य विधाता' का प्रकाशन हुआ. सन २०१९ में बाल कहानी कृति- 'सोच का प्रतिफल' प्रकाशित हुई. इसके अलावा सन् २००६ से अब तक लगभग ६ दर्ज़न से अधिक व्याकरण की पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथा अनेक शोध आलेख प्रकाशित हुए. आज मेरे पास गद्य की

(शेष पृष्ठ ४९ पर...)

सागर/सीपी

'ज़रूरी नहीं कि हर संवेदनशील व्यक्ति लेखक हो, लेकिन लेखक के लिए संवेदनशील और मानवीय होना ज़रूरी होता है.'

धीरेंद्र अस्थाना

(मधु अरोड़ा से 'कथाबिंब' के लिए साहित्यकार धीरेंद्र अस्थाना की बातचीत)

☐ आपने सत्तर के दशक से आज तक एक लंबा साहियिक जीवन देखा है, आप तब के और आज के साहित्य में क्या फ़र्क पाते हैं?

साहित्य में हर दशक के बाद एक पीढ़ी बदल जाती है. इन बदलते हुए हर दस वर्षों में देश, विदेश, उसके समाज, उसकी राजनीति, उसका रहन-सहन और उसकी संवेदनशीलता भी बदल जाती है. तो ज़ाहिर है कि हर आनेवाली पीढ़ी के सरोकार, संवेदनाएं और लेखन वे नहीं हो सकते जो उसकी पिछली पीढ़ी के हो सकते थे. एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं. आज जो पीढ़ी कथा-साहित्य में सक्रिय है, उसकी कहानियों में फ़ेसबुक, आर्कुट, जी टाक, ट्विटर, एस एम एस, ई-मेल आदि आदि शब्द, मुहावरे बहुतायत में हैं. जबकि छठे या सातवें दशक में इन चीज़ों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी. यह तो हुआ तकनीकी बदलाव. संवेदनशीलता और विचारशीलता में भी इसी प्रकार फ़र्क आता है. जहां तक आज के साहित्य की बात है तो मुझे लगता है कि वह शिल्प के स्तर पर ज़्यादा चौकन्ना है बनिस्बत संवेदना के. बीस-बाइस कहानियां पढ़ने के बाद कोई एक कहानी ज़ेहन में अटकती है, ठहरती है. जबकि सत्तर के दशक की कहानियों के साथ ऐसा नहीं था.

☐ आप पेशे से पत्रकार हैं और मूड से कहानीकार, तो पत्रकार और कहानीकार के रूप में किस प्रकार ताल-मेल बिठा पाते हैं?

पत्रकार और कहानीकार दोनों होने के कुछ लाभ हैं तो कुछ नुक़सान भी हैं. पत्रकार जीवन, समय और समाज को लेकर आपके दृष्टिकोण को ज़्यादा व्यापक, यथार्थवादी और बहुआयामी बनाता है लेकिन नुक़सान यह है कि निरंतर पत्रकारीय लेखन करते रहने से आपको छपने का जो सुख हर समय मिलता रहता है वह आपके रचनाकार के लिए 'साइलेंट किलर' का भी काम करता रहता है. दोनों पक्षों में बेहतर तालमेल ऐसे लेखक को बिठाना ही होता है जो पेशे से पत्रकार होता है.

☐ आप मुंबई के साहित्यिक परिवेश के बारे में क्या सोचते हैं?

मुंबई में राष्ट्रीय स्तर के अनेक रचनाकार सक्रिय हैं और हमेशा से सक्रिय रहे हैं लेकिन उनमें से किसी को भी वह मान, सम्मान और दर्ज़ा नहीं मिला जो दिल्ली में रहनेवालों को मिल जाता है. मुंबई का यह सबसे माइनस पाइंट है. इस शहर की दूसरी दिक्कत इसकी दूरियां हैं. लेखक लोग आपस में उस तरह मिल-जुल या बैठ नहीं पाते जैसे दिल्ली, पटना, कोलकता, भोपाल, वाराणसी में आपस में मिल पाते हैं. यहां साहित्यिक पत्रिकाएं भी देखने को नहीं मिलतीं. यहां के लेखक चुपचाप लिखते और छपते हैं. उनके लिखे पर चर्चा भी नहीं होती तो भी पता नहीं क्या है इस शहर में ऐसा कि जो यहां बस जाता है, वह किसी दूसरे शहर की तरफ़ आंख उठाकर भी नहीं देखता.

☐ आज हिंदी साहित्य जगत में जिस तरह का व्यवसायीकरण और गुटबाजी चल रही है, उस पर क्या कहना चाहेंगे?

हिंदी साहित्य जगत में व्यवसायीकरण और गुटबाजी हमेशा से चलती आयी है और चलती रहेगी. अच्छे लेखक का रिश्ता इन दोनों से ३६ का होना चाहिए. उसे इस दुनिया के समानांतर अपनी रचनात्मक दुनिया में जीना-मरना चाहिए क्योंकि अंत में वही बचेगा जो रचेगा.

☐ आपके लिए मानवीय सरोकार, आपसी संबंध क्या मायने रखते हैं?

इस प्रश्न का सूत्र में यही ज़वाब है कि मानवीय हुए बिना तो लेखक हुआ ही नहीं जा सकता. यह ज़रूरी नहीं है कि हर संवेदनशील व्यक्ति लेखक हो. लेकिन यह ज़रूरी है कि लेखक संवेदनशील और मानवीय हो. जहां तक मेरी बात है, मुझे लगता है कि मैंने बहुत सारी भौतिक चीज़ें खोकर रिश्तें कमाये हैं और अपनी इस कमाई पर मुझे गर्व है.

धीरेंद्र अस्थाना

मधु अरोड़ा

☐ आपके नजरिये से विवाहेतर संबंधों का क्या औचित्य है?

मुझे लगता है कि विवाहेतर संबंध पनपने के दो बड़े कारण ये हैं — पहला, जिस साथी के साथ आप रह रहे हैं, उससे मतभेद और मनभेद हो गया है. इस संबंध से निकलकर अग़र किसी विवाहेतर संबंध में जाते हैं, इसका मतलब है कि दूसरे रिश्ते को आप अपने लिए ज़्यादा अनुकूल, सुरक्षित और केयरिंग मानने लगे हैं. चाहे विवाहेतर संबंध का और कोई भी तर्क हो तो भी मूलत: यह संबंध खुद को केंद्र में रखकर देखने, जीने से निर्मित होता है. मेरा इस मामले में नज़रिया एकदम स्पष्ट है कि एक साथ दो रिश्ते नहीं चलने चाहिए. एक रिश्ते को छोड़कर दूसरे रिश्ते में पनाह लेने की स्वतंत्रता सबको है लेकिन रिश्तों में ठगी और गड़बड़ नहीं होना चाहिए, जो भी हो, एकदम साफ़ हो. जब समाज और क़ानून ने हमें अलग हो जाने का अधिकार दिया है तो एक रिश्ते में बने रहकर दूसरे रिश्ते में सेंध लगाने का औचित्य मुझे समझ में नहीं आता.

☐ तो फिर लिव-इन रिलेशनशिप क्या है?

लिव-इन रिलेशनशिप एक बिल्कुल अलग कन्सेप्ट है जो हमें महानगरों की दौड़ती-भागती, कामकाज़ी दुनिया ने दिया है. इस रिलेशनशिप में न तो कोई ज़िम्मेदारी है और न ही कोई मांग है. दो लोग जब तक एक-दूसरे को पसंद करते हैं, सहन करते हैं, साथ रहते हैं. जब चीज़ें उलट जाती हैं तो अलग हो जाते हैं. यह एक प्रकार का अनुबंध जैसा है जो देखने में भले ही सुविधाजनक लगे लेकिन मूलत: बेहद संगदिल और बनैला है.

☐ क्या आप यह मानते हैं कि औरत जब स्पेस चाहती है तो निर्मम हो जाती है?

यहां सवाल औरत या मर्द का नहीं है. इस समय समाज और संबंधों में कोई भी व्यक्ति जब अपना स्पेस चाहेगा तो दूसरों को वह निर्मम दिखाई देगा. स्पेस के साथ यह निर्मम जैसा दिखना एक विसंगति की तरह दर्ज है. अग़र कोई अपने पेशे (लेखन, पत्रकारिता, चिकित्सा, खेल, अभिनय) को प्राथमिकता देता है तो वह अपने दूसरे दायित्वों के साथ कटौती करेगा ही. यह कटौती ही उसे दूसरों की नज़रों में निर्मम या स्वार्थी बनाती है. औरतों के संदर्भ में यह अवधारणा इसलिए उभरकर आती है कि कुछ दशक पहले तो स्त्री के संदर्भ में स्पेस की तो कोई अवधारणा ही नहीं थी. स्त्री का भी अपना एक स्पेस होता है और होना चाहिए, मैं इस बात का पक्का समर्थक हूं.

☐ आपकी लेखन-यात्रा में आपकी पत्नी ललिता ने किस प्रकार सहयोग किया?

एक लाइन में कहें तो तन-मन-धन से. तन से मेरा तात्पर्य है उसने वे तमाम तक़लीफ़ें झेलीं जो एक संघर्षशील लेखक के साथ रहने पर झेलनी होती हैं. मन का अर्थ है कि उसने मेरे लेखक मन को अपना मन दिया. धन से मेरा तात्पर्य है मैं जितना भी कमा सका, उसने उतने में हंसकर गुज़ारा किया. इससे बड़ा सहयोग कोई पत्नी अपने लेखक पति को क्या दे सकती है?

☐ आपको १९९६ में इंदु शर्मा कथा सम्मान प्राप्त हुआ. आपके लिए ये सम्मान, पुरस्कार कितने महत्वपूर्ण हैं?

'पुरस्कारों से कोई लेखक छोटा या बड़ा नहीं होता.' – यह एक ऐसा शाश्वत ज़वाब है जो आदिकाल से दिया जाता रहा है और अनंत काल तक दिया जाता रहेगा. फिर भी न पुरस्कार कम होते हैं और न पुरस्कारों को प्राप्त करने की इच्छा. इतना ज़रूर है कि पुरस्कार आपकी प्रतिभा का तात्कालिक रेखांकन करने में सहायक बनते हैं लेकिन पुरस्कारों

को सोच-समझकर स्वीकार करना चाहिए. जिस पुरस्कार से कोई ग़हरा सम्मान, भावना या अकादमिक उंचाई न जुड़ी हो, उसे टाल देना चाहिए. इंदु शर्मा कथा सम्मान मेरे लिए अत्यंत महत्व रखता है क्योंकि उसके साथ एक निश्छल भावना जुड़ी है.

☐ प्रवासी साहित्य को आप किस तरह परिभाषित करते हैं?

मेरे संदर्भ में यह सवाल मौज़ूं नहीं है क्योंकि मैंने बहुत कम प्रवासी साहित्य का अध्ययन किया है. जो कभी-कभार छुट-पुट कहानियां पढ़ी हैं उनमें संभावनाएं जैसी तो दिखती हैं लेकिन वे उस अटारी पर नहीं हैं जहां साहित्य रहता है. मुझे ऐसा भी लगता है कि प्रवासी साहित्य को लेकर कई सारी ग़लत धारणाएं भी सक्रिय हैं. अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि प्रवासी साहित्य किसे कहा जाये? हिंदी के उन लेखकों का लेखन जो विदेशों में बस गये हैं या उन लेखकों का लेखन जो विदेशों में ही जन्मे, पले और बढ़े हैं और हिदी में लिखते हैं. मसलन, अभिमन्यु अनत शबनम मेरी नज़र में मारिशस के लेखक हैं जबकि कुछ लोग उनके लेखन को प्रवासी मानते हैं. ठीक इसी तरह जापान में रहनेवाले लक्ष्मीधर मालवीय हिंदी के लेखक हैं या कि प्रवासी लेखक. अच्छा हो कि कोई विद्वान इस गड़बड़ को ठीक करे.

☐ आपके उपन्यासों को पढ़कर यह तो पता चलता है कि आपके मित्र आपकी कसौटी पर ख़रे नहीं उतरे, क्या आप अपने मित्रों की कसौटी पर ख़रे उतरे हैं?

आप मित्रों और परिचितों में कन्फ़्यूजन पैदा कर रही हैं. सारे ही परिचित मित्र भी हों, यह ज़रूरी नहीं है. पहले तो मैं मित्र की एक लोकप्रिय परिभाषा देना चाहूंगा जो मोहन राकेश ने दी थी. उन्होंने कहा था, 'आपका एक मित्र तो होना ही चाहिए, अग़र आपके दो मित्र हैं तो आप भाग्यशाली हैं. तीन मित्र तो हो ही नहीं सकते'. मोहन राकेश ने यह बात बातों-बातों में कही थी लेकिन इस जुमले में ग़हरा अर्थ छिपा है. मेरे जिस उपन्यास के बारे में आप यह कह रही हैं कि मेरे मित्र मेरी कसौटी पर ख़रे नहीं उतरे, वह एक ही उपन्यास है, 'गुज़र क्यों नहीं जाता?' जिसका बैकड्रॉप दिल्ली का वह समय है जब मैं बुरा वक़्त झेल रहा था. उसमें जो लोग रेखांकित किये गये हैं, वे मित्र नहीं हैं बल्कि विभिन्न चरित्र हैं. असल में दोस्ती और मोहब्बत दोनों ही स्थितियों में यह कहावत लागू होती है, 'एक आग का दरिया है और डूबकर जाना है'. सिर्फ़ मेरे ही नहीं, किसी के भी जीवन में हर वह परिचित दूर छूट जाता है जो दोस्ती में उतर नहीं पाता. मेरी नज़रों में मेरे जो मित्र हैं, उनकी कसौटी पर मैं ख़रा हूं.

☐ अंतिम सवाल, केवल कोई एक पंक्ति ऐसी बताइए जो आपको प्रिय भी हो और कुछ हद तक आपके व्यक्तित्व को परिभाषित भी करती हो.

'हाय हाय, मैंने उन्हें देख लिया नंगा अब मुझको इसकी सज़ा मिलेगी.' .... मुक्तिबोध.

डी२/१०२. देवतारा एपा., सागर कॉम्प्लेक्स, रामदेव पार्क रोड, मीरा रोड (पू.), ठाणे-४०११०५

मधु अरोड़ा

ए-१ /१०१, रिद्धी गार्डन, फिल्म सिटी रोड, मलाड (पू.), मुंबई-४०००९७२.

मो. ९८३३९५९२१६

लेखन मेरे जीवन....पृष्ठ ४६ से आगे

आठ तथा पद्य की छः पुस्तकों की पांडुलिपियां प्रकाशन हेतु तैयार हैं. लगभग दो दर्ज़न से अधिक पुरस्कार व सम्मान भी प्राप्त हुए हैं. मेरे दोनों बच्चे चि. मनुज 'भारत' व चि. अनुज अनुभव की भी एक-एक बाल कविता कृति प्रकाशित हो चुकी है.

सन २००२ से ही मेरे विवाह के बाद से ही निरंतर आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं ने उद्वेलित किया है. पत्नी की बीमारी तथा बीमारी के कारण ही २०११ में मां का स्वर्गारोहण जैसी परिस्थितियों में भी मेरी क़लम चलती रही है. मुझे यह कहते हुए अपार हर्ष होता है कि मेरे हताशा और निराशा से भरे दौर में, ज़िंदगी की जद्दोजहद के दुर्दिनों में लेखन ही मुझे संबल देता रहा है. लेखन मेरे लिए जीवनी शक्ति के संचार की प्रक्रिया है. यह लेखन मुझे प्रत्येक परिस्थिति में जीवनी शक्ति देता है. इतना ही नहीं 'लेखन मेरे जीवन का अहम् हिस्सा है'.

३४/२, लाजपत नगर, एन.एच.-२, मथुरा-२८१००४

मो. ९२५९१४६६६९,९७५८५९३०४४

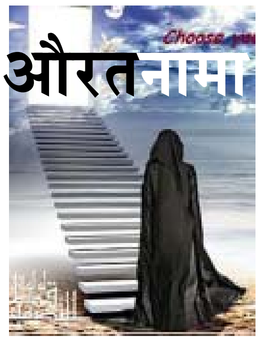

संकल्प-वेदी पर समर्पिता : डॉ. आनंदीबाई गोपालराव जोशी

✍ डॉ. राजम पिल्लै

सन १८८३ बंगाल के सिरामपुर कॉलेज़ का विशाल हॉल. कॉलेज़ के प्रिंसिपल, अध्यापक और स्थानीय गणमान्य जनों की उपस्थिति में मुश्किल से १९ वर्षीय एक भारतीय महिला ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों और प्रभावशाली शैली में एक गंभीर विषय पर वक्तव्य दिया और वह विषय था — भारतीय स्त्रियों के स्वास्थ्य की, विशेषकर प्रसूति विषयक समस्याओं के प्रति समाज के प्रगतिशील उदारतम नेताओं की भी लापरवाही! उन्होंने कहा —

वर्तमान भारत में महिला डॉक्टरों का नितांत अभाव-सा है. मुझे यह देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि उन संस्थाओं ने भी, जो कला, विज्ञान और स्त्री-शिक्षा के विकास के लिए गठित की गयी हैं, कभी यह नहीं सोचा कि उनकी महिला सदस्यों में से किसी एक को विश्व के विकसित हिस्सों में भेजा जाए, मेडिकल ज्ञान प्राप्त करवाया जाए ताकि हमारे यहां महिलाओं के मेडिकल प्रशिक्षण के लिए कॉलेज़ खोले जा सकें. यह बात किसी को भी साफ़-साफ़ दिखायी दे सकती है कि कोई भी भारतीय औरत किसी पुरुष डॉक्टर से चिकित्सा करवाने से सरासर हिचकिचाएगी. यहां आनेवाली विदेशी महिला डॉक्टरों के सामने भी वे असुविधा महसूस करती हैं क्योंकि दोनों के बीच संस्कृति का, बहुत बड़ा अंतराल होता है. मेरी यह विनम्र राय है कि भारत में हिंदू (यहां 'हिंदू' से तात्पर्य 'भारतीय' है) लेडी डॉक्टरों की मांग बढ़ती ही जा रही है, और इस कार्य के लिए मैं अपने को स्वयं ही पहल लेकर प्रस्तुत करती हूं.

वह साहसी, तेजस्वी महिला थी — आनंदीबाई जोशी.

भारतीय इतिहास में, विशेषकर महिला-विकास के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करनेवाली — डॉ. आनंदीबाई गोपालराव जोशी.

मेडिकल शिक्षा के लिए पश्चिम की ओर रवाना :

आनंदीबाई ने, जहाज-मार्ग से न्यूयॉर्क की ओर यात्रा, बहुत जल्द ही शुरू की. कृतसंकल्प, आनंदीबाई के लिए किसी कार्य में मन-प्राण से जुट जाना एक सहज, स्वाभाविक क़दम था. उनके पति श्री गोपालराव जोशी, थियोसोफ़िकल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया के सक्रिय सदस्य थे, विदेशी शिक्षाविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं से उनके औपचारिक संबंध थे; वे स्वयं आनंदीबाई के साथ, अमेरिका जाकर, उनको किसी प्रतिष्ठित मेडिकल कॉलेज़ में भर्ती करवाना चाहते थे लेकिन अन्य अनुबंधों की वजह से जा नहीं पाए; सो, यह यात्रा, आनंदीबाई ने अकेले ही की. यों उनके साथ भारत के विदेशी मित्रों के परिचित लोग थे. सन १८८३ में जब वे न्यूयॉर्क पहुंचीं तब भी उनका स्वागत करने के लिए विदेशी मित्र-जनों का परिवार था.

जानकारों की सलाह पर आनंदीबाई ने पेंसिलवेनिया के विमेंस मेडिकल कॉलेज़ को आवेदन पत्र लिखा. उस समय विश्व का दूसरा विशेष रूप से महिलाओं के लिए संस्थापित मेडिकल प्रोग्राम था. आनंदीबाई को इसमें प्रवेश मिल गया.

आनंदीबाई की उम्र उस समय केवल १९ वर्ष की थी. यों भी उनका स्वास्थ्य कमज़ोर ही रहा करता था. विदेश की जलवायु और नये प्रकार के खान-पान ने आनंदीबाई को टी. बी. का मरीज़ बना दिया. लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी और पढ़ाई करती रहीं.

मार्च १८८६ को उन्होंने एम. डी. की उपाधि पायी. उनकी थीसिस का विषय था — 'Obstetrics among the Aryan Hindoos' (आर्य हिंदू महिलाओं की प्रसूति - विषयक स्थिति.)

अपनी थीसिस में उन्होंने प्राचीन भारतीय आयुर्वेदिक और अधुनातन अमेरिकी मेडिकल ग्रंथों का उपयोग किया था.

डॉ. आनंदीबाई जोशी की यह सफलता इतनी उल्लेखनीय मानी गयी कि उनके ग्रेजुएशन पर स्वयं महारानी विक्टोरिया ने उन्हें बधाई का पत्र लिखा.

भारत-वापसी :

सन १८८६ में डॉ. आनंदीबाई भारत लौटीं. पति गोपालराव जोशी भी इस बीच अमेरिका पहुंच गये थे. लगभग सारा समाज यह भूल चुका था कि पत्नी को शिक्षित बनाने के लिए घर से बाहर भेजने वाले पति को कैसी-कैसी आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ा था. कुछ स्नेही-जन तो आशंकित भी थे कि कहीं जोशी दंपति को भारत लौटने पर विधिवत 'प्रायश्चित' न करना पड़े या कहीं हमेशा के लिए वे 'बहिष्कृत' न घोषित कर दिये जायें.

डॉ. राजम पिल्लै

पर ऐसा कुछ नहीं हुआ. डॉ. आनंदीबाई जोशी का नाम उस प्रथम भारतीय महिला चिकित्सक के रूप में इतिहास में अंकित हो चुका था. जिसने विदेश जाकर, विदेशी विश्वविद्यालय से एम. डी. की उपाधि पायी.

'श्रम-साफल्य' :

मराठी भाषा में ऐसी स्थिति को 'श्रम साफल्य' का सुखद, मधुर, परिणाम कहा जाता है.

सफलता की अगली पायदान भी अपने-आप सामने आ गयी. कोल्हापुर रियासत ने उन्हें स्थानीय एल्बर्ट एडवर्ड हॉस्पिटल के महिला वार्ड का फिज़ीशियन इंचार्ज़ नियुक्त किया.

अल्पजीवी जीवन - दीर्घजीवी कीर्ति :

एक ही वर्ष के भीतर २६ फरवरी १८८७ को आनंदीबाई की मृत्यु हो गयी. अभी उनकी उम्र २२ की नहीं हो पायी थीं. मृत्यु की वजह थी — सुदीर्घ काल से चली आती थकावट, कमज़ोरी और अंत में टी. बी. बीमारी के दौरान अमेरिका से दवाइयां मंगायी जाती रहीं लेकिन रोग दुस्साध्य हो चुका था.

पूरे देश में शोक मनाया गया, विदेश के मित्रों ने उनकी स्मृतियों को संजोकर रखा.

डॉ. आनंदीबाई गोपालराव जोशी नहीं रहीं, लेकिन अपने पीछे कुछ सवाल छोड़ गयीं, विशेष रूप से समाज-शास्त्रियों के लिए 'फेमिनिस्टों' के लिए.

क्या आनंदीबाई का जीवन 'आनंदमय' था?:

क्या आनंदीबाई कीर्ति चाहती थीं? महत्वाकांक्षी थीं? क्या उन पर जो थोपा गया था, वही उनकी अल्पायु का कारण तो नहीं था?

अंग्रेज़ी में ग्रीस से प्रकाशित होते FOTA (Newletter of The Theo-sophical Archives) के ISSUE NO VII, Winter 2016- Spring 2017 में डॉ. आनंदीबाई के जीवन को विभिन्न पहलुओं से देखा गया है. पत्रिका की विशेष दिलचस्पी का कारण यह है कि डॉ. आनंदीबाई के पति श्री गोपालराव जोशी, थियोसोफ़िकल सोसाइटी से बहुत अर्से से जुड़े रहे थे.

Anandi Gopal Joshee : The First Woman from India to obtain a Western Medical Degree लेख में लेखिका एरिका जियोरजियाडेस (Erica Georgiades) ने आनंदीबाई के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को छूते हुए बताया है कि गोपालराव विनायक जोशी सन १८७० में पोस्टल डिपार्टमेंट ऑफ़ बांबे में क्लर्क थे, उसी दौरान आनंदीबाई (पूर्व नाम यमुना) के परिवार के संपर्क में आये. वे यमुना को संस्कृत पढ़ाते थे. बाद में यमुना के पिता के आग्रह-अनुरोध पर उससे विवाह कर लिया और महाराष्ट्र की परंपरा के अनुसार मायके का नाम बदलकर नया नाम 'आनंदी' दिया. उस समय आनंदी की उम्र थी लगभग ९ साल और गोपालराव की थी उससे दुगुनी और वे विधुर थे. १४ साल की उम्र में आनंदी ने एक बच्चे को जन्म दिया और वह दस ही दिन में मर गया.

श्री गोपालराव जोशी को निश्चित ही सौ फ़ीसदी यह श्रेय जाता है कि अपने समय की परंपराओं की तुलना में वे बहुत ही प्रगतिशील थे और लगातार अपनी पत्नी को शिक्षित करने और डॉक्टर बनाने की धुन में लगे रहते थे.

यहीं पर महाराष्ट्र के विख्यात समाजशास्त्री डॉ. कोशांबी ने अपने एक लेख "Anandibai Joshee : Retrieving

लघुकथा

जगह

प्रतिभा चौहान

खचाखच भरी हुई दोपहर की बस यात्रियों की भीड़ की वजह से एक ओर झुकी हुई सी चल रही थी. मानो किसी घोड़े पर ज़रूरत से ज़्यादा वजन लाद दिया गया हो. आगे से पीछे तक ठसाठस भरे हुए यात्री, ब्रेक लगते ही एक दूसरे पर गिर-गिर पड़ते. एक मिनट के लिए भी बस रुकने पर यात्री पसीने से बेहाल हो जाते. पीछे से चिल्लाने की आवाज़ें आने लगतीं, गाड़ी बढ़ाओ... गाड़ी बढ़ाओ...

बहरहाल हवा से बातें करती बस अगले स्टॉप पर जा कर रुकी. कुल मिलकर छह व्यक्ति बस अड्डे पर थे. एक मरीज को थामे हुए पांच व्यक्ति भीड़ को चीरते हुए अंदर घुसे और बस में समा गये, भीड़ नाक भौं सिकोड़ते हुए इधर उधर हुई. दोनों तरफ़ की सीटों के बीच के गलियारे में केवल पैर रखकर खड़े होने की जगह ही बची थी. किसी तरह बमुश्किल वे लोग आड़े तिरछे होकर बस के ऊपर वाले पाइप को पकड़ कर खड़े हो गये. फिलहाल बस चल पड़ी. रोगी व्यक्ति बहुत अधिक बीमारी के कारण खड़े होने से लाचार था परिणामस्वरूप बैठ गया. अगल-बगल की सवारियां चिल्लायीं, ' अरे अरे... रे ... रे... र्, यहां पांव रखने की जगह नहीं है बैठ काहे रहे हो? खड़े रहो' रोगी व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा 'मेरी तबीयत बहुत ख़राब है मैं खड़े नहीं रह सकता मुझे थोड़ी सी जगह दे दीजिए मैं उसी में बैठा रहूंगा.'

बस में बैठे किसी भी व्यक्ति ने उसका बैठना स्वीकार नहीं किया. शोर-शराबा हल्ला हंगामा करके आख़िरकार उसे फिर से खड़ा कर दिया. अभी बस चलते हुए कुल तीस मिनट ही हुए थे कि बस के दम घोटू माहौल और तकलीफ़ देय स्थिति ने बहुत देर उसके जर्जर शरीर का साथ न दिया. उसकी सांसों की लड़ी टूट गयी और वह गिर पड़ा. एकाएक सवारियां चिल्लाने लगीं, 'अरे मर गया है... मर गया... मर गया... हटो-हटो, दूर हटो...' भय और किसी प्रकार के संक्रमण से बचाव के लिए सभी व्यक्ति दाएं बाएं हट गये, जिन्हें जगह नहीं मिली एक के ऊपर एक चढ़कर बैठ गये. मृतक के आसपास की लगभग चार सीटें खाली हो चुकी थीं. बस अगले स्टॉपेज़ के लिए तेज़ी से दौड़ रही थी. गंतव्य आने से पूर्व तक मृत शरीर के आसपास की चार सीटें खाली पड़ी रहीं.

अपर जिला न्यायाधीश, नालंदा (बिहार), मो.: ८५४४४२६८०८

a Fragmented Feminist Image'' में ख़ुद आनंदीबाई के अपने पति को लिखे गये एक पत्र से कई ऐसे वाक्य उदधृत किये हैं कि १४ साल की लड़की... कितनी-कितनी डांट-फटकार यहां तक कि ताड़नाओं का भी सामना करती रही थी.

आनंदीबाई के जीवन की यह बहुत बड़ी विडंबना रही कि 'प्रथम भारतीय महिला डॉक्टर' का विरुद पाने वाली वह स्वयं एक रोगी शरीर और निरंतर संत्रस्त मानस को आजीवन ढोती रहीं और उम्र हासिल हुई भी तो कितनी? कुल जमा २२ साल.

संकल्प वेदी पर समर्पिता : डॉ. आनंदीबाई गोपालराव जोशी

'आनंदी गोपाल' जैसी फ़िल्मों, उपन्यासों के ये दोनों मुख्य पात्र जैसे एक ज़िद्दी दर्शनार्थी भक्त और दूसरी मूर्ति के सम्मुख रखे रजत-पात्र में रखी कपूर की डली! दोनों को ही नमन.

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : rajampillai43@gmail.com

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

'प्रत्येक परिवार की धुरी मां'

✍ डॉ. सविता ओझा

प्रतिरूप तुम्हारा** (कथा-संग्रह) — **डॉ. निरुपमा राय
***प्रकाशक :** नमन प्रकाशन, **मूल्य :** ३००/-*

'प्रतिरूप तुम्हारा' कथा संग्रह 'सत्रह कथाओं' का ऐसा पुष्पगुच्छ है जो अपनी सुरभि से समाज को प्रफ्फुलित तथा आह्लादित करता है. लेखिका ने स्वयं इन कथाओं के संदर्भ में अवगत कराया है कि देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ये कथाएं प्रकाशित हैं. इन कथाओं में मुख्य रूप से ममता की प्रतिमूर्ति 'मां' की अलौकिकता प्रतिभासित होती है.

'स्त्री' जो कि विधाता की अन्यतम और सर्वोत्कृष्ट रचना कही गयी है. इसके अनेकों नाम विदित हैं — कन्या, दुहिता, युवती, तरुणी, कलत्र, भार्या, जाया, श्वसा, भगिनी, सुंदरी, कामिनी, अबला, कांता, ललना आदि. परंतु इन सभी नामों के अतिरिक्त स्त्री के जिस स्वरूप एवं नाम को समाज में प्रतिष्ठा मिली वह है — पुरुंध्री एवं अंबा अर्थात 'माता'. यह परिवार एवं समाज की ऐसी धुरी है जिससे सभी उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं. 'मां' अपने स्नेह सिंचन से परिवार रूपी बेल को अनवरत पुष्टता एवं वृद्धि की ओर ले जाती है.

इस कथा संग्रह की प्रथम कथा 'प्रतिरूप तुम्हारा' में स्त्री अपनी दिवंगत माता का प्रतिरूप स्वयं की पुत्री में देखती है. यह अकाट्य सत्य है कि जब मनुष्य पीड़ा में आकंठ डूब जाता है तो स्मृति में 'अपनी मां' को ही समीप पाता है. उसी प्रकार 'स्लिप डिस्क' से पीड़ित स्त्री की शारीरिक एवं मनोव्यथा इस कथा में मुखरित हुई है. जब शारीरिक पीड़ा से जूझती मां को बारह वर्षीय प्रिया द्वारा सेवा-शुश्रुषा के अतिरिक्त मीठी झिड़की देते हुए भोजन का एक-एक निवाला खिलाया जाता है तो उसके इसी ममत्व में उस मां को अपनी माता का प्रतिरूप दिखाई पड़ता है.

'मां' शब्द की अलौकिकता उसके ममत्व में आलोकित होती है. आवश्यक नहीं कि यह अलौकिकता अपनी संतति को जन्म देने वाली जन्मदात्री में ही दर्शित होती हो. बल्कि हृदय से संवेद्य, ममता की प्रतिमूर्ति किसी स्त्री में हो सकती है. जैसा कि 'प्रतिरूप तुम्हारा' की प्रिया का अपनी 'मां' के प्रति, 'उत्तर दो मां' की नानी का अपनी विकलांग नातिन के प्रति, 'प्रतीक्षा का पाथेय' की अम्मा का अपनी भतीजी मुन्नी के प्रति, 'पांचवी कथा' में संध्या रानी का उस नवजात बच्ची के प्रति और तो और एक पक्षी के प्रति एक मां का ममत्व 'मां की बिटिया नयनतारा' में अभिव्यंजित हुआ है.

एक मां अपनी शारीरिक विपदा में किसी भी हद तक सहन कर जाती है परंतु अपनी संतति की पीड़ा से आहत होकर उसकी अंतर्रात्मा तार-तार हो उठती है जैसा कि 'ताले वाली डायरी' कथा में 'डायबटीज' रोग से पीड़ित अपनी छोटी बच्ची सोनू की अतृप्त लालसा से आहत होकर दीपा टूट जाती है. परंतु जब उस बच्ची की डायरी से उस बालमन में अपनी मां के प्रति चल रहे अंतर्द्वंद्व का भान होता है तो वह मां अपनी संतति के लिए अपने दु:सह दु:ख को हृदय में समेट कर अपने आपको कमज़ोर न पड़ने देने की ठान लेती है.

'उत्तर दो मां' कथा में एक विकलांग पुत्री की व्यथा समाज के प्रति एक प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है. वह शारीरिक रूप से अशक्त परंतु शारीरिक सौंदर्य की प्रतिमूर्ति कन्या समाज की विभीषिका को झेलती हुई अपनी नानी के अदम्य उत्साह एवं अथक प्रयासों से अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है. जिस मां ने उसका त्याग कर दिया था उसके प्रति यह कथन — 'मां हो... आख़िर में एक प्रश्न... अगर मैं बेटा होती तो क्या तब भी मुझे त्याग देतीं?' यह प्रश्न समाज की ज्वलंत समस्या को प्रतिबिंबित करता है. इसके अतिरिक्त इसी कथा में शिक्षा की महत्ता की भी अभिव्यंजना उस पुत्री के द्वारा हुई है — क्या स्त्री की कोई इच्छा नहीं होती? कोई स्वाभिमान नहीं होता? होता है... शिक्षित होती तो विरोध, विद्रोह एवं स्वाभिमान का अर्थ समझती. किंतु

यहां मात्र यह समझ लेना कि स्त्री को साक्षर होना चाहिए, उचित नहीं होगा बल्कि एक स्त्री को साक्षर होने के साथ-साथ शिक्षित होना अत्यावश्यक है तभी समाज में उत्कर्षाधायक परिवर्तन होने की संभावना होगी जैसा कि इसी कथा की पात्र 'नानी' के द्वारा अदम्य प्रयास किया गया. वह साक्षर नहीं थी किंतु शिक्षित अवश्य कही जा सकती है.

वर्तमान भौतिकता के युग में संवेदनाएं तिरोहित होती जा रही हैं, परिवार सिमटते चले जा रहे हैं. अति उच्च महत्त्वाकांक्षा के तीक्ष्ण हथियार से मानव अपने संबंधों, संवेदनाओं का कर्त्तन करता जा रहा है और बड़ी तीव्र गति से मशीनी मानव में (संवेदना शून्य) परिवर्तित होता जा रहा है. माता-पिता अपना सर्वस्व तिरोहित कर जिन बच्चों को उच्च से उच्च शिक्षा दिलाकर उनके उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं, वे बच्चे अपनी उच्च महत्त्वाकाक्षाओं के वशीभूत होकर परदेश में ऐसे जा बसते हैं, जैसे वृद्ध माता-पिता से उनका कोई संबंध ही न हो.

'प्रतीक्षा का पाथेय' कथा में तीन योग्य पुत्रों की अम्मा जो एकाकीपन के दंश को झेलती है और बिलखती कह उठती है — 'बच्चों का भविष्य क्या अपने देश में रहकर नहीं संवर सकता था... तीनों में से किसी ने नहीं सोचा. ये कैसी उड़ान है जो इन्हें अपनी जड़ों से काटकर दूर फेंक रही है.' बेटे द्वारा दस हज़ार रुपये का ड्राफ़्ट भेजे जाने पर 'अम्मा' की वेदना मुखर हो उठती है. '... रुपये देखकर आत्मा तृप्त कर लूं. कोई आ नहीं सकता... मुन्नी का कलेज़ा फटने लगा था. इस मशीनी युग में भावनाएं पाषाणतुल्य होती जा रही हैं. ...क्या इसी दिन के लिए लोग संतान की कामना करते हैं?'

'अर्द्धांगिनी' की माता तो अपने पुत्र की उपेक्षा से आहत होकर अपने पुत्र की भर्त्सना करने हेतु क़ाग़ज-क़लम को माध्यम बनाती है. सुभद्रा अपने बीमार पति की पुत्र-मिलन की उत्कट इच्छा से ही पत्र लिखने को विवश हुई. इस कथा में 'वृद्धावस्था' का एकाकीपन इस कथन से हृदय को विदीर्ण कर देने वाला है — 'हमारी सैकड़ों मनौतियों का फल हो बेटा... और हमें क्या मिला... एकाकी बुढ़ापा?' एक मां और एक अर्द्धांगिनी के स्वाभिमान को लेखिका ने अपनी लेखनी के माध्यम से बड़ा ही सटीक आलंबन दिया है — पत्र के नीचे 'तेरी मां' लिखते हुए न जाने क्यों उसकी अंगुलियां कांप उठीं. मन को कठोर बनाकर उसने नीचे लिखा, सुभद्रा देवी... पत्नी... श्री रामप्रकाश सिंह.

'गठरी' तथा 'प्रतिदान' में भी स्त्री के एकाकीपन का दंश प्रतिबिंबित हुआ है. ये कथाएं समाज की ज्वलंत समस्या को उजागर करती हैं. 'उस मुंडेर पर अब धूप नहीं आती' तथा 'सरस्वती सदन' कथाएं, भारतीय संस्कृति के अनुरूप संयुक्त परिवार का पुरजोर समर्थन करती दिखती हैं.

इन कथाओं की भाषा एवं शिल्प पर विचार करें तो समसामयिक अंग्रेज़ी-मुक्त भाषा का प्रयोग है जो कथा की मांग है. इंटरनेट के इस युग में हमारे भविष्य के युग निर्माताओं को शायद ही यह अनुभूत हो कि जब हृदय वेदना से द्रवित या आनंद से आल्हादित हो तो अपनी वाणी उसे संवेद्य नहीं बना पाती. तब क़लम उस संवेदना को प्रकट करने में सक्षम हो पाती है. तभी पत्र-लेखन में संवेदनाएं मुखर हो पाती हैं. लेखिका ने भी 'अर्द्धांगिनी' और 'ताले वाली डायरी' प्रभृति कथाओं में इस विधा को अपनाकर सफलता हासिल की है. कथा का शिल्प यद्यपि सशक्त है तथापि 'नयनतारा' कथानक में पाठक के लिए थोड़ी भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि 'पक्षी' है या 'लड़की'. संपूर्ण कथा में ('सरस्वती सदन' को छोड़कर) माता और पुत्री के बीच के सकारात्मक पक्ष को प्रबलता से दर्शाने में लेखिका को सफलता हासिल हुई है. जबकि माता-पुत्र के बीच संवेदना का निषेधात्मक पक्ष ही प्रस्तुत किया गया है.

वस्तुत: संपूर्ण कथा संग्रह सहृदय पाठकों की उत्सुकता को बनाये रखने और हृदय को उत्कंठित होने को विवश कर देता है. प्रत्येक कथा में समाज की कोई न कोई समस्या और उनके समाधान की ओर संकेत किया गया है. लेखिका ने अपने शब्द सौष्ठव से पाठकों को बांधे रखा है.

सहायक प्रोफ़ेसर,
पूर्णियां कॉलेज़, पूर्णियां (बिहार)
मो. ९४५३२२८७२८

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.
ई-मेल : kathabimb@gmail.com **- संपादक**

'बुद्धिजीवी प्रसाधन केंद्र उर्फ़ इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर'

✍ अरुण शाद्वल

इंटेलेक्चुअल्स पार्लर *(व्यंग्य-संग्रह)* - ***भगवती प्रसाद द्विवेदी***
प्रकाशक : *अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुज़फ़्फरपुर-८४२००२* ***मूल्य :*** *२०० रुपये*

साहित्य जगत में श्री भगवती प्रसाद द्विवेदी का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है. भगवती बाबू ने एकांत भाव से विपुल लेखन किया है. बिना किसी शोरशराबे के बिना आत्मश्लाघा या आत्मप्रशंसा के आप चुपचाप साहित्य साधना में लगे रहते हैं. देश के पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कहीं भी स्थित किसी न किसी संस्था से साहित्य सृजन के लिए सम्मानित द्विवेद्वी जी को कवि, गीतकार, कथाकार के रूप में तो ख्याति प्राप्त है ही, बाल साहित्य जितना इन्होंने लिखा है, देश के किसी भी नामचीन साहित्यकार ने शायद ही लिखा है. हिंदी और भोजपुरी में समान सामर्थ्य से लिखने वाले भगवती बाबू की कविता कहानियां तो हम सबने पढ़ी हैं पर 'इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर' के नाम से सद्य: प्रकाशित आपके व्यंग्य संग्रह से आपने हम सभी को चकित कर दिया है. इसको पढ़ते हुए मन एक सुखद आश्चर्य से भर जाता है क्योंकि व्यंग्यकार के रूप में उन्होंने स्वयं को कभी प्रचारित नहीं किया. आज के ज़माने में व्यंग्य के नाम पर कुछ भी ऊलजलूल लिखकर या लेख में फूहड़ हास्य प्रविष्ट कराकर स्वयं को व्यंग्यकार कहलवाने की चेष्टा करने वाले अर्ध–साहित्यिक या कहें कि असाहित्यक साहित्यकारों के लिए यह संग्रह उस मार्गदर्शिका की तरह है जो उन्हें व्यंग्य लिखने की सही तमीज़ सिखा सकती है.

जब समाज में विसंगतियां, कुरीतियां, विषमताएं अपने पैर फैलाने लगती हैं और एक बेसहारा निरुपाय आम आदमी उन विषमताओं का शिकार बनता है उन विषमताओं के विरुद्ध लेखकीय प्रतिकार की तरह होती है व्यंग्यरचना. यह उन निर्बलों की कसक को प्रतिध्वनित करती है जो सारे अन्यायों को सहन करने के लिए अभिशप्त होते हुए भी इसके प्रतिकार में कुछ कर नहीं पाते. ये विसंगतियां जीवन के किसी भी क्षेत्र में हो सकती हैं. पर मूलत: ये शासक एवं दबंग वर्ग द्वारा सामान्य नागरिक का किये जानेवाले शोषण को उजागर करती है. व्यंग्य इसी शोषण के विरुद्ध चुटकी काटता है.

संग्रह में कुल २५ रचनाएं हैं और इनमें व्यंग्यकार ने जीवन के प्राय: हर पहलू को समेटा है. 'संबंधों का अंत्य परीक्षण' हमारे घर परिवार में बढ़ते जा रहे पैसे के प्रभाव का परीक्षण करता है जहां माता-पिता कम योग्य किंतु कमाऊ पूत और अधिक शिक्षित एवं योग्य परंतु बेरोज़गार पुत्र में लाभ के आधार पर अपनी ममता का निर्धारण करते नज़र आते हैं. 'सुनी-अनसुनी' में लेखक कहता है कि 'लगता है समूचा देश बहरेपन की बीमारी का शिकार हो गया है, कोई तंत्र किसी की नहीं सुनता. 'आये खोलने और दिखाने के दिन' में लेखक प्यार के नाम पर समाज की नयी पीढ़ी में बढ़ती जा रही कामुकता पर चोट करता है तो 'उल्टा-पुल्टा' में तिकड़मों के माध्यम से उल्टी राह चल कर सफलता लपक लेने वाले इंसानों की ख़बर लेता है. 'और चाबी खो जाये' में रचनाकार इस बात से व्यथित है कि लगता है कि पूरे देश के हर विभाग की चाबियां गुम हो गयी हों और पूरे देश पर ताला लगा हो. साहित्य जगत से गहरे संबद्ध होने के कारण साहित्यकारों, कवियों और लेखकों की दुनिया में फैली विसंगतियों पर लेखक की गहरी नज़र है और इसके विभिन्न आयामों पर आधारित कई रचनाएं संग्रह में हैं, यथा 'अथ: गुरुदेवोपाख्यानम्', 'साहित्यिक अर्ध नारीश्वरों के नाम', 'साहित्यकार पत्रकार बनाने की ठेकेदारी', 'शब्दों के अर्थ बनाम अर्थवान शब्द', 'कवि जी की काव्य साधना', 'साहित्य से सन्यास' और 'कवि सम्मेलन'.

देश में राष्ट्रभाषा हिंदी की होती दुर्दशा भी लेखक की आंखों से बची नहीं है और इसका सच्चा बयान 'हिंदी की गाड़ी और हिंदी अधिकारी' में मिलता है. पत्नी प्राय: सभी व्यंग्यकारों की रचनाओं में प्रमुखता से एक सशक्त किरदार रही है. उस अबला को रचनाओं में सबला बनाकर सभी व्यंग्यकारों ने अपनी भड़ास निकाली है. सही पूछा जाये तो व्यंग्य लेखक की रचनाओं की पत्नी प्राय: ग़रीब की जोरू की तरह होती है जो सबकी भौजाई होती है. द्विवेदी जी की रचनाओं में भी पत्नी अलग-अलग भावों में अपनी भूमिका निभाती नज़र आती है. लड़का कैसा भी काला कलूटा कुरूप और नालायक हो पर पत्नी उसे अपटूडेट विश्वसुंदरी चाहिए (पति बनने का सुख), झूठ की महिमा (झूठ बोले कौआ काटे) तथा जब टीवी हमारे समाज में नया नया घुस रहा था उस समय की मोहल्ला संस्कृति को आधार बना कर

लघुकथा

मज़हबी खुराफ़ात

मार्टिन जॉन

एक क़रीबी दोस्त से पक्की ख़बर पाकर अपनी बेटी के रिश्ते के लिए लॉर्ड जीसस को याद करते हुए वह घर से रवाना होने ही वाला था कि व्हाट्सएप ने घंटी बजाकर उसका ध्यान अपनी ओर खींचा. मोबाइल लॉगिन कर अनमने ढंग से उसने व्हाट्सएप के न्यू मैसेज़ पर नज़रें फिरायीं. लिखा था, 'जीसस विल कम एट योर होम, बी रेडी फॉर हिज़ वेलकम!' इस वाक्य को दस बार दोहराया गया था और मैसेज़ के अंत में सलाह दी गयी थी कि अगर आज ही कोई शुभ संदेश पाने की इच्छा हो तो इस मैसेज़ को दस मिनट के अंदर दस लोगों को फॉरवर्ड कर दें.

मैसेज़ पढ़कर उसे तत्क्षण चिट्ठियों वाला ज़माना याद आ गया. क़रीबन पच्चीस साल पहले कुछ इसी तरह की पंक्तियों वाला एक पोस्टकार्ड उसे मिला था. शुभ संदेश पाने के लिए उन पंक्तियों को दोहराते हुए बीस लोगों को पोस्ट करने की सलाह दी गयी थी. उस समय उसका धर्मभीरु मन उस पोस्टकार्ड की उपेक्षा नहीं कर सका था. बीस लोगों को उसने बक़ायदा बीस पोस्टकार्ड पोस्ट कर डाले थे. सप्ताह भर इंतज़ार करने के बाद कोई ख़ुशख़बरी तो मिली नहीं अलबत्ता उसके बड़े भाई की मौत की ख़बर ज़रूर मिली.

वह बेटियों का पिता था. शुभ काम के लिए वह घर से निकल रहा था. ढाई दशक पहले के कटु अनुभव से गुज़रने के बावजूद वह व्हाट्सएप के इस मैसेज़ को इग्नोर नहीं कर सका. फ़ौरन उसने इसे दस लोगों को फॉरवर्ड कर दिया और रेल्वे स्टेशन के लिए रवाना हो गया. दस चालीस की लोकल ट्रेन पर सवार होकर गंतव्य स्टेशन पहुंचा. अपनी फिक्रमंद पत्नी को सही सलामत पहुंचने की ख़बर देने के मक़सद से मोबाइल निकालने के लिए जैसे ही उसने जेब में हाथ डाला, उसके होश उड़ गये. जेब से मोबाइल ग़ायब था. दूसरी जेब में हाथ डालकर तेज़ी से अंगुलियां फिरायीं. मनीपर्स भी ग़ायब!

अपर बेनियासोल, पो. आद्रा, जि. पुरुलिया, पश्चिम बंगाल-७२३१२१.
मो. : ९८००९४०४७७

लिखा गया व्यंग्य 'टीवी बीबी और मेरे पड़ोसी' हमें कचोट भरी गुदगुदाहट से भर देते हैं. आज इतने अधिक चैनल और टीवी हैं कि अब उस ज़माने के हम लोग उस स्थिति को पुन: पाने के लिए तरस सकते हैं. बार-बार मकान बदलने को अभिशप्त किराएदारों की व्यथा 'मकान बदलने का चक्कर' में बख़ूबी बयान हुई है.

'इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर' इस संग्रह की प्रतिनिधि व्यंग्य रचना है. हमारे देश में संख्या वृद्धि पा रहे छद्म बुद्धिजीवियों को केंद्र में रखकर लिखा गया यह एक श्रेष्ठ व्यंग्य है, जहां बुद्धिजीवी बनने के लिए या कहें कि दिखाई देने के लिए लोग कैसी-कैसी चेष्टाएं करते हैं. इसे ख़ूबसूरती से बयां किया गया है. ऐसे लोगों की सोच होती है कि जैसे ब्यूटीपार्लर में कृत्रिम सौंदर्य बनाया जा सकता है वैसे ही इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर जैसे किसी संस्थान में बुद्धिजीवी गढ़े जा सकते हैं. ताकि शायद गंभीर मौन बने रहने, छद्म निजता बनाने मात्र से ही, या विशेष बाना धारण करने से ही व्यक्ति बुद्धिजीवी हो जाता है. छद्म बुद्धिजीवियों की मानसिकता पर तीक्ष्ण प्रहार करने वाला यह व्यंग्य यदि गुजरात राज्यशाला पाठ्यपुस्तक मंडल की कक्षा १२ के पाठ्यक्रम में शामिल हुआ है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं.

इस संग्रह की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इस में द्विवेदी जी ने 'व्यंग्य की तीक्ष्णधार और बिहार झारखंड के व्यंग्यकार' के शीर्षक से एक लेख भी शामिल किया है. इस लेख में द्विवेदी जी ने एक गंभीर शोधकार की तरह अपने देश और विशेषत: बिहार, झारखंड के व्यंग्यकारों का एक लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया है जो अपने आप में ही एक संग्रहणीय निबंध है.

मेरा विश्वास है कि यह व्यंग्य संग्रह सुधी पाठकों द्वारा हाथों हाथ लिया जायेगा और प्रशंसित होगा.

मो. ९९५५५४२१३५

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

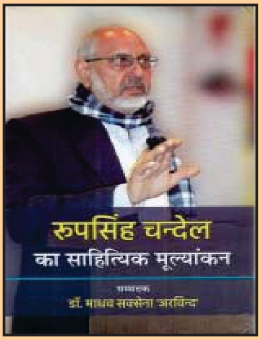

मूल्य
७२५ रु.

रूपसिंह चन्देल का साहित्यिक मूल्यांकन

सम्पादक : डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी रामबाग,
कानपुर-२०८०१२

ई-मेल : amanprakashan0512@gmail.com

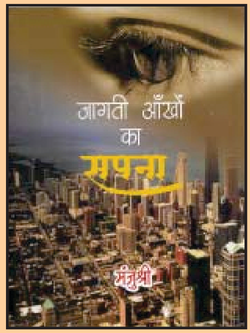

मूल्य
३९५ रु.

जागती आँखों का सपना (कहानी-संग्रह)

लेखिका : मंजुश्री

नीरज बुक सेंटर, सी-३२, आर्यनगर सोसायटी,
प्लॉट-९१, आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

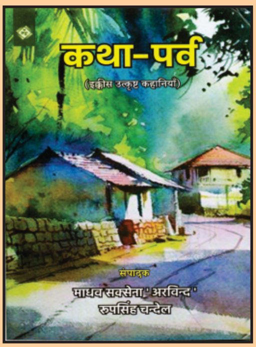

मूल्य
५२५ रु.

कथापर्व

**अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी
रामबाग, कानपुर-२०८०१२**

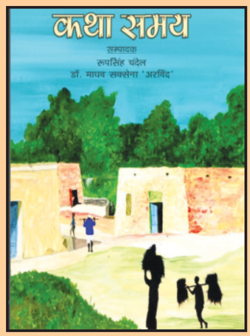

मूल्य
४०० रु.

कथा समय

**भावना प्रकाशन, १०९-ए,
पटपड़गंज,दिल्ली-११००९१**

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

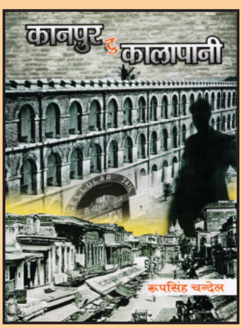

मूल्य
४२५ रु.

कानपुर टू कालापानी

**अमन प्रकाशन, १०४-ए/८० सी
रामबाग, कानपुर-२०८०१२**

२० प्रतिशत
छूट का
लाभ उठायें.

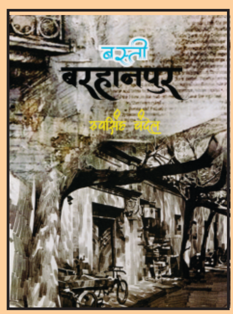

मूल्य
४५० रु.

बस्ती बरहानपुर

**भावना प्रकाशन, १०९-ए,
पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१**

ई-मेल : bhavna_pub@rediffmail.com

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071.